पंच-रत्न ।

(सम्राट् श्रेणिक, महानन्द, कुरुम्बाधीश्वर, नृप विज्जलदेव और सेनापति वैचप्पकी कथायें)

सम्पादक—

सुप्रसिद्ध ऐतिहासिक लेखक बाबू कामताप्रसादजी जैन।

प्रकाशक—

मूलचन्द किसनदास कापड़िया,

मालिक, दि० जैन पुस्तकालय, कापड़ियाभवन—सूरत।

स्वर्गीय सौ० सवितावाई (धर्मपत्नी मूलचंद किसनदास कापडिया) के स्मरणार्थ "दिगम्बर जैन" पत्रके २६ वें वर्षके ग्राहकोंको भेट।

जैनविजय प्रिंटिंग प्रेस-सूरतमें मूलचन्द किसनदास कापडियाने मुद्रित किया।

मूल्य-छह आने।

शुद्धाशुद्धि पत्र ।

पृ०	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
२	१२	नन्दजी	नन्दश्री
८	११	किन्तु पुराण	किन्तु यह पुराण
१०	३	मिलते	मिटते
३२	१८	युवकक	युवक
३४	२१	भील़	भीड़
३८	१८	ज[illegible]नों	जैनों
३९	१०	दिया	बोल दिया
३९	१९	देशके	दर्शक
३९	२१	होगया	बन गया
४६	११	विज्जलदेव	विज्जलदेवके
४६	१९	उन	उस
५०	१	मसालों	मशालों
५०	११	वैचित्र	वैचित्र्य
५६	१६	नेताओंमें	नेताओं
६०	१३	घोड़े वर	घोड़े पर
६१	९	सेनागति	सेनापति

स्व० सौभाग्यवती सविताबाई

–स्मारक ग्रन्थमाला नं० ३.

हमारी पत्नी सवितावाईका स्वर्गवास सिर्फ २२ वर्षकी आयुमें एक पुत्र व पुत्रीको छोड़कर वीर सं० २४५६ श्रावण वदी १० को होगया था तब उनके स्मरणार्थ हमने २०००) इसलिये निकाले थे कि यह रकम स्थायी रखकर इसके व्याजसे "सवितावाई स्मारक ग्रन्थमाला" हिन्दी या गुजराती भाषामें निकाली जाय और उसका 'दिगम्बर जैन' या 'जैनमहिलादर्श' पत्र द्वारा विना मूल्य प्रचार किया जाय। अतः यह ग्रन्थमाला चालू की गई है, जिसमें १–ऐतिहासिक स्त्रिया (जैन महिलादर्शके १० वें वर्षके और दिगम्बर जैनके २४ वें वर्षके ग्राहकोंको) तथा २–संक्षिप्त जैन इतिहास दूसरा भाग प्र० खंड ('दिगम्बर जैन' के २५ वें वर्षके ग्राहकोंको) प्रकट करके भेंटमें बांट चुके हैं और यह तीसरा ग्रंथ–"पंचरत्न" भी इसी ग्रन्थमालासे प्रकट किया जाता है और 'दिगम्बर जैन' मासिक पत्रके २६ वें वर्षके ग्राहकोंको भेंटमें दिया जाता है। यदि ऐसी ग्रंथमालाका अनुकरण जैन समाजमें हो तो अनेक अप्रकट ग्रन्थोंका सुलभ प्रचार होसकता है।

वीर सं० २४५९ }
चैत्र सुदी १३ }

मूलचन्द किसनदास कापड़िया,
संपादक–'दिगम्बर जैन'

अभिवंदन !

'पंचरत्न' के छपे हुये पृष्ठ भाई कामताप्रसादजीने मुझे भेजे। इसके लिये मैं सम्मानित और आभारी हूं।

हमारे पुराणोंमें बहुत कुछ है। लगभग वह सब है जो जीवनके उत्कर्षके लिये हमें चाहिये। तत्व उनमें है, उसका व्यवहृत और उदाहृत चित्र तो उनमें है ही, किन्तु इस समय यह अवश्य दीख पड़ता है कि अपने व्यष्टि और समष्टिगत उद्धारके लिये हम अपने पुराण-ग्रन्थोंका भी उद्धार करें।

जो हमारे पौराणिक इतिहास और पौराणिक धर्मके मान्य महा-पुरुष हैं उन सबको हम इस प्रकार देखनेकी आदतमें पड़ गये हैं कि वे हमारे लिये पुरुष नहीं रह गये, कोई लोकोत्तर कोटिके जीव होगये हैं! आदर्शसे अधिक अचंभेकी वस्तु वे हमारे लिये होगये हैं। उनको हम पूजा करते हैं, पर उन द्वारा स्वयं अपने जीवनमें अनुप्राणित हम नहीं हो पाते। इसीसे हमारी धार्मिक मान्यता (Professions) और हमारी सामाजिक अवस्था इनमें भयंकर विषमता दीख पड़ती है। आवश्यकता है कि हमारे तीर्थंकर, कामदेव, नारायण, प्रतिनारायण आदि समस्त शलाकापुरुष हमारे सामने इस प्रकार जीवितरूपमें उपस्थित किये जांय कि चाहे उनकी लोकोत्तरता और उनके अति-शयोंमें ऊपरसे हमें कुछ घटी दिख पड़े, पर वे अधिक मानव, अपने हृदयके अधिक सन्निकट, अधिक ग्राह्य और सच्चे रूपमें अधिक आदर्श हों। उनसे एक साथ हम स्फूर्ति पावें और शान्ति पावें। जिनको हम

पूज तो सकें पर साथ ही जिन्हें हम प्रेम भी कर सकें। प्रेम तब संभव और अनिवार्य है जब तुच्छ मानव और सिद्ध मानवमें तारतम्य शेष रहने दिया जाता है—आत्यंतिक रूपमें लुप्त नहीं कर दिया जाता। हम देखें, अरहंत इसी लिये हमारे लिये सिद्धसे पहिले हैं।

भाई कामताप्रसादजीने इस पंचरत्नमें जो किया है इसी दिशाकी ओर एक सत्प्रयत्न है। कहानियोंके मूल्यको हमने कम पहिचाना है। अपने जीवन और जीवनकी संवृद्धि-विवृद्धिको समझकर देखें तो जान पड़े, भोजनके लिये जो नमक है, जीवनके लिये वही चीज कहानी है। पुराने पुरुषोंको हमने मानवगम्य, हृद्गम्य जब बनाया तो देखा, हमने उनकी कहानी कह डाली। भावी पुरुषोंके सम्बन्धमें भी हम यही करते रहते हैं।

प्रत्येक मनीषी अपना अपना एक मानवोत्तर मानव (Superman) का रूप प्रस्तुत करता है। जीवन इसी प्रकार बनता है और जातियां एवं राष्ट्र भी इसी प्रकार बनते हैं। हम समझना चाहते हैं, अपने भीतरकी सम्पूर्ण आकांक्षाके जोर हम समस्त बाह्यको अपने भीतर खींचते हैं, फिर आत्मगत करनेके बाद उसीको आत्मप्रकाशमें बाहर प्रतिष्ठित करते हैं, वही होती है कहानी!

भाई कामताप्रसादजीका यह उद्योग सत् है और साथ ही खासा सफल भी है। उन्होंने अपनी बात, अपने ढंगसे अच्छी कही है। मेरा उन्हें अभिवंदन!

पहाड़ीधीरज—दिल्ली।
११ मार्च ३३

—जैनेन्द्रकुमार।

निवेदन ।

जैन समाजके सुप्रसिद्ध इतिहासज्ञ श्री० बाबू कामताप्रसादजी रचित अनेक ऐतिहासिक ग्रंथ हम प्रकट कर चुके हैं उसी प्रकार यह प्राचीन ऐतिहासिक जैन कथायें जो आपने ही खोजपूर्वक लिखकर तैयार की हैं प्रकट करते हैं और उसके सुलभ प्रचारार्थ दिगम्बर जैनके २६ वें वर्षके ग्राहकोंको भेंटमें दी जाती है तथा कुछ प्रतियां विक्रयार्थ भी अलग निकाली गई हैं। आशा है कि अन्य ऐतिहासिक पुस्तकोंकी तरह इसका भी अच्छा प्रचार होगा। जैन शास्त्रभण्डारोंमें अनेक जैन राजाओं व महापुरुषोंकी कथायें भरी पड़ी हैं। उनको भी इसी प्रकारके नये ढंगसे प्रकाशमें लानेकी आवश्यकता है। अतः जो भाई ऐसी नवीन जैन कथायें खोज करके हमको भेजेंगे तो उनको प्रकट करनेकी यथाशक्य व्यवस्था करनेके लिये हम तैयार हैं।

निवेदक—

मूलचन्द किसनदास कापड़िया,

—प्रकाशक।

दो शब्द।

मैं कहानी-लेखक नहीं हूं। फिर भी मैंने कहानियां लिखी हैं। यह भी और इससे पहले और भी। इनको मैंने कर्तव्यवश लिखा है। जैन कथाओंने एक समय सारे संसारका कल्याण किया था। आज हिन्दीवालोंको उनका पता नहीं है। बहुतसी बात तो स्वयं जैनी भी नहीं जानते। बस, इसीलिये कि लोग जैन कथाओं और जैन महापुरुषोंको जानें-पहिचानें, मैंने यह उद्योग किया है।

इस उद्योगमें मैं सफल हुआ हूं या नहीं? यह मैं नहीं जानता और न जाननेकी मुझे चिन्ता ही है। उनके लिखनेमें मेरा उद्देश्य ही दूसरा है। कहानीका आधार कल्पना-मात्र है। मनुष्य-चरित्रको कहानी लेखक स्पष्ट चित्रित कर देता है। किन्तु मेरी कहानियोंका आधार कोरी कल्पना नहीं है—वे सत्य घटनाओंपर निर्भर हैं—ऐतिहासिक हैं। श्रेणिक-बिम्बसार भारतीय इतिहासमें सर्वप्राचीन सम्राट् परिगणित हुये हैं। जैन शास्त्रोंमें उनका वर्णन खूब मिलता है। मैंने तो उसकी एक झांकी-भर कराई है। महापद्म नन्दोंमें महान् थे। इतिहास और जैन शास्त्रमें उनका परिचय गर्भित है। सर विन्सेन्ट स्मिथने अपने इतिहासमें (Early History of India) उनके बने हुये स्तूपोंको और उनका जैन होना संभवित बताया है। इरुगप्प श्रावकोत्तम थे। उन्होंने विजयनगर साम्राज्यमें सम्मिलित होकर हिन्दू राष्ट्रकी असीम सेवा की थी। दक्षिणभारतके इतिहासमें उनके इस स्वर्ण-कृत्यका बखान है। कुन्दनत्थीश्वरका वर्णन प्रो० आपर्टने किया है (Oppert's Original Inhabitants of India) उनका

सम्बन्ध दक्षिण भारतके जैन-संघसे रहा है। मालूम नहीं, दक्षिणके जैन ग्रन्थोंमें उनका परिचय किस रूपमें सुरक्षित है? इसी तरह शेष कहानीका आधार भी ऐतिहासिक घटना है। सारांशतः प्रस्तुत कहानियां ऐतिहासिक घटनाओंका पल्लवित रूप हैं। उनसे जैन संघकी उदार समाज-व्यवस्था और जैनोंके राष्ट्रीय हित-कार्यका भी परिचय होता है। पाठक, उन्हें पढ़ें और उनसे अपने मूल्यमय जीवनको अनुप्राणित करें!

मैं भाई जैनेन्द्रकुमारजीका आभार स्वीकार करता हूं कि उन्होंने मेरे कहनेसे भूमिकारूपमें कुछ 'लिखा' है।

अन्तमें मैं श्री० कापड़ियाजीका भी उपकार स्वीकार करना अपना कर्तव्य समझता हूं। उन्हींकी कृपासे यह पुस्तक शीघ्र ही बहु-प्रचारमें आरही है। विश्वास है, मेरा यह उद्योग अपने उद्देश्यमें सफल होगा।

अलीगंज (एटा),
होलिका, १९३३

विनीत—
कामताप्रसाद जैन।

ॐ नमः सिद्धेभ्यः।

पंच-रत्न।

[१]

सम्राट् श्रेणिक बिम्बसार!

सावनकी घनघोर घटायें पृथ्वीको जलमय बना गई थीं। नदी नाले सब ही इठलाते हुए बहे जारहे थे। छोटे२ लड़के उनमें कागजकी नावें चला चलाकर आनन्द लूट रहे थे। आकाश निर्मल हो गया था। घोंसलोंसे निकलकर चिड़ियायें चहकने लगीं थीं। देखते देखते सन्ध्याकी कालिमा और निर्जनता आ धमकी। बटोही अपने अपने ठिकाने लगे। किन्तु नन्दश्रीके पिता अभीतक लौटकर न आये! वह घरके द्वारपर जा खड़ी हुई और दूरतक आँखें दौड़ा आई पर उसके पिता दिखाई न पड़े! निराश होकर वह घरमें लौट गई! उसकी मुख-श्री फीकी पड़ गई-दिल धड़कने लगा! नयन द्वार पर जा अटके! वह षोडश वर्षकी कमनीय सुन्दरी गंभीर विषाद और औत्सुक्यकी मूर्ति बन गई! उसके होठोंपर न हंसी थी और न घरके कामोंकी ओर उसका ध्यान था। जरा आहट पाते ही उसके चञ्चल नेत्र द्वारसे जा टकराते! किन्तु

उसे अधिक समय तक इस असमंजसमें न रहना पड़ा। नन्दश्रीके पिता आगये। उसका कुमलाया हुआ चहरा खिल उठा। वह झटसे उठ खड़ी हुई और अपने पिताके हाथसे झोला झंगड़ लेकर बोली—'ओहो, पिताजी! आज तो आपने बड़ी देर करदी। मैं तो बाट देखते२ मरी जारही थी। बड़ा मेंह बरसा!'

पिताने कहा—'हाँ बेटी, पानी बहुत ही बरसा। इस मेंह-वृन्दमें यजमानने घरसे निकलने ही नहीं दिया।

नन्द०—'यह तो मैं सोच ही रही थी। वह हैं बड़े भले आदमी!'

पिता बीचहीमें बोले—' और फिर वहांसे चला, तो रास्तेमें एक उल्लूसे पाला पड़ गया।'

नन्दश्रीने अचरजमें कहा—'उल्लू!'

पिताने उत्तर दिया—हां उल्लू! पर है आदमीकी शक्लका और शेखी मारता था क्षत्रीपुत्र होनेकी!'

नन्दश्रीने कौतूहलसे पूंछा—' तो उस क्षत्रीपुत्रमें उल्लूपनकी बात क्या थी? पिताजी! आज तो आप पहेलियांसी बूझ रहे हैं।'

पिता०—अरी बेटी! छोड़ उस नास्तिककी कथा! ला, लोटा ले आई! जीती रह बेटी! हाथ-पैर धो लूं।'

पुरोहित महाराजने हाथ पैर धोकर कुल्ला कर लिया। नन्दश्रीने लाकर उनके सामने जलपानकी थाली रखदी। पुरोहित-जीने उसका समुचित आदर-सत्कार करनेमें देर न लगाई। जब पेटमें कुछ बोझ हुआ तो हंसते २ बोले—' सचमुच बेटी आज

उस उल्लूके साथ होनेसे रास्ता बड़े मजेमें कटी। पर हां, उल्लू साथी होनेका दोष तनिक जरूर भुगतना पड़ा!'

नन्दश्रीको क्षत्रीपुत्रके विषयमें जाननेकी लालसा थी, इस अवसरको उसने जाने न दिया। बड़ी दिलचस्पीसे उसने कहा—'सो कैसे पिताजी?'

पिता—कैसे क्या? वह पूरा नास्तिक है! न यक्ष देव माने और न गंगा माताको पूजे।

नन्द०—इन बातोंसे सचमुच आपने उसे बड़ा अधर्मी मान लिया।

पिता०—हां अधर्मी और पूरा उल्लू!

नंद०—भला! अब जरा आप उसके बारेमें खुलासा बताइये!

पिता०—अच्छा सुन बेटी! रास्तेमें पीपलके पेड़वाले यक्षको मैंने नमस्कार किया और रुककर चलते चलाते परिक्रमा भी देली! पर वह उल्लू मेरे इस धर्मानुष्ठानको खिल्ली उड़ाता रहा और मजा यह कि पेड़तले भी छतरी लगाकर खड़ा रहा! मैंने उसे खूब फटकारा, पर वह भी छटा बदमाश निकला। अगाड़ी चलकर उसने कपिरोमा लतामें अपना देव बताया। मैंने आव गिना न ताव, झटसे उस बेलको उखाड़ फेंका और दांतोंसे धर दबोचा! पर बेटी, मैं ठगा गया। उस बेलने मेरे शरीरमें आगसी लगादी। मैं खुजाते २ मरा जाऊं और वह उल्लू खीसें निकाल २ हंसता रहा!

पिताकी इस बातपर नंदश्री भी हंस पड़ी, पुरोहित खिसानेसे

रह गए । नंदश्री पिताकी बेवसीको ताड़गई; बोली—'फिर क्या हुआ पिताजी ?'

पिताजी—'हुआ क्या ? अगाड़ी गङ्गाजीमें जाकर स्नान किया तब कहीं कुछ शांति मिली ! पर वह दुष्ट वहां भी न माना । गङ्गा-जीमें जूते पहने घुसपड़ा । पूरा उल्लू था बेटी ! नास्तिक ! नास्तिक !

नंदश्री—'नास्तिक वास्तिक तो मैं जानती नहीं पिताजी; किंतु पेड़के नीचे छतरी लगाकर खड़े होने और नदीमें जूते पहन-कर घुसनेके काम अक्कलमंदीसे खाली नहीं हैं ।'

पिता—क्यों नहीं ? लड़की है न । बुद्धि बेचारी कहांसे लाए ।'

नंदश्री—पिताजी ! बुद्धि पुरुषोंके ही बांटमें नहीं पड़ी है । खैर आप सोचिये तो सही ! पेड़के ऊपरसे कोई पक्षी बिष्टा करता और वह क्षत्रीपुत्र छतरी न लगाए होता तो कपड़े बिगड़ते या नहीं ?

पिता—'हां, है तो यह बात ठीक ! पर जूते पहनकर पानीमें घुसना उल्लूपन नहीं था क्या ?'

नंदश्री—'हंसपड़ी, नहीं पिताजी वह भी बुद्धिमत्ताका काम था !'

पिता—'बेशक ! नया जमाना है—नई बातें हैं ! फिर क्यों न ऐसी बातें बुद्धिमत्ताकी कही जांय, जिन्हें हम अपने बापदादोंके दादोंसे भी बेवकूफीकी सुनते आए ! जरा २ से लड़के लड़कियां अक्कलका पोटरा बांधे फिरती हैं ना ?'

नन्द०—पिताजी आप नाराज न होइये ! जरा सोचिये—

विचारिये! मैं गलती करूं तो समझा दीजिये। दुनियां तो परिवर्तनशील है। इसमें उन्नति-अवनतिका चर्खा चलता रहता है। फिर बुरे माननेकी कौनसी बात!

पिता-'बेटी, मैं बुरा नहीं मानता! तेरा क्या दोष? जमानेकी हवा बिगड़ रही है!'

नन्द०-पिताजी, फिर आप वही बात कहते हैं। सचमुच जमानेकी हवा कुछ भी नहीं बिगड़ रही है। नवयुगका उदय होरहा है। लोगोंमें ज्ञान और आत्मबल बढ़रहा है। उक्त क्षत्रीपुत्र इस नवयुगका पुजारी कोई नवयुवक ही मालूम होता है!'

पिता-'हां बेटी! है तो वह नवयुवक ही।'

नंदश्री-'तो ठीक है! न वह नास्तिक था और न उल्लू ही। भेड़िया-धसानका वह कायल जरूर नहीं मालूम होता। देवत्व पेड़ों और पत्थरोंमें वह नहीं मानता और आत्मशुद्धि ही उसके निकट सच्ची शुद्धि मालूम होती है! है न यह बात ठीक?

पुरोहित चुपचाप सुनता रहा, नंदश्री भी पिताकी ओर देखने लगी। हठात् उसने कहा-'कुछ भी कह बेटी! पर गङ्गा-मैयाकी अवज्ञा भली बात नहीं!'

नंदश्री-पिताजी, यहां भी आप भूलते हैं। उस क्षत्रीपुत्रने जूते गङ्गामैयाकी अवज्ञा करनेके लिए नहीं पहने थे, उसने कंट-कादिसे बचने-अपनी आत्मरक्षाके लिए उन्हें पहना था।

नंदश्री-यह कहती ही रही और थका-मांदा पुरोहित जाकर खाटपर पड़ रहा। पर नंदश्रीने वहां भी उसका पिण्ड न छोड़ा।

बातों ही बातोंमें उसने उस क्षत्रियपुत्रका पता लेलिया और उसे अपने यहां निमंत्रित करनेकी अनुमति भी लेली। अनुमतिको झट उसने कार्यरूपमें परिणत कर दिया। नंदश्री क्षत्रियपुत्रके बुद्धिकौशलपर मुग्ध होगई। उनमें घनिष्टता बढ़ने लगी।

(२)

मगधदेशका राजा उपश्रेणिक था। उसकी राजधानी राजगृह थी। श्रेणिक बिम्बसार तब युवराज थे। किन्तु विधिकी मेखको वह पलट न सके। बेचारेका युवराज पद भी छिनगया और देशनिकालेका दण्ड भी भुगतना पड़ा! पुरोहित महाराजकी इन्हीं क्षत्रियपुत्र श्रेणिकसे रास्तेमें भेंट होगई थी और नंदश्रीने उनसे गाढ़ सम्बन्ध स्थापित करलिया था! नवयुगकी श्री उसके पुजारीको मिल गई। श्रेणिक अपनी आपदा भूल गये! एक दिन नंदश्रीने उनसे देशनिकालेका कारण पूछा। श्रेणिक हंस पडे, बोले—'क्या करोगी पूछकर? प्रेम खिलाड़ी बड़ा नटखट है। उसकी कृपासे मुझे भी आपके दर्शनोंका सौभाग्य मिल गया।'

नंदश्रीको उससे संतोष न हुआ। उसने कहा—'यह तो मैं नहीं मान सक्ती कि आपके पिताजीने प्रेमकी प्रेरणासे आपको देशनिकालेका दण्ड दे डाला! नहीं बताना है, मत बताओ!'

श्रे०—'यह लो, खूब समझीं आप!' मेरा मतलब यह थोडे ही था!

नन्द०—'तो क्या था? युवराज सा०, जरा बताइये तो!'

श्रे०—'अच्छा सुनिये, युवराज्ञी....'

नन्द०–'हैं यह क्या? युवराज्ञी मैं क्यों?'

श्रे०–'नाराज न होइये–हृदयसे पूछिये! सुकुमार 'ना' का अर्थ 'हां' ही मैंने सुना है!'

नन्द०–'मैं कहे देती हूं, यह खयाली पुलाव आप न बांधा कीजिये! शिष्टताका कुछ ध्यान रखिये! मैं ब्राह्मण कन्या और आप क्षत्रीपुत्र! मेरा आपका सम्बन्ध क्या?'

श्रे०–ठीक है, शिष्टताको उल्लंघन न कीजिये; पर जाति-पांतिके झगडेमें भी न पडिये! सुना नहीं क्या? भगवान महावीर और म० बुद्धने इस ढकोसलेके विरुद्ध क्रान्ति मचा दी है और आज सारा लोक उनके झन्डेके नीचे एकत्र होरहा है! नवयुगकी कुमारी और जाति–पांतिका दूरूढ़ मोह! आश्चर्य है!'

नन्द०–'मुझे व्यक्तिगत रूपमें यह कोई भी मोह नहीं है और इसमें नूतनता भी कुछ नहीं हैं। अनेक पौराणिक पुरुषोंके अन्त-र्जातीय सम्बन्ध हुये, शास्त्रोंमें कहे गये हैं। किंतु आप जानते हैं, आजकल स्थितिपालक समाज ऐसे विचारोंका कट्टर विरोधी है!'

श्रे०–'है जरूर, परन्तु इन भेडियाधसानवाले लोगोंकी बातें अब मूल्य नहीं रखतीं और न वे अब टिक ही सक्ती हैं। जिस रक्तशुद्धिपर कुलकी श्रेष्ठताकी डुगडुगी वह पीटते हैं, प्रभू महावीरने उसके टुकड़े २ कर दिये हैं!'

नंद०–'भला सो कैसे?'

श्रे०–'अरे यह मोटीसी बात है! संसार दुर्निवार है–स्त्री पुरुष विषयलोलुपी हैं! देखती नहीं हो, पीले कपड़े पहने अरण्य-

वासी लोग भी इस दाहसे अछूते नहीं बचे हैं ! शकुन्तलाका जन्म इसका प्रमाण है ! किन्तु शकुन्तलाने तेजस्वी नर-रत्न उत्पन्न किया ! अब बताइये, कोई कह सक्ता है क्या कि अनन्त लोक प्रवाहमें उसके कुलमें कोई दोष नहीं लगा ? और फिर कुल शुद्धिपर ही यदि योग्यता और श्रेष्ठता अवलम्बित है, तो शकुन्तलाके गर्भसे नर-पुंगवका जन्म कैसे हुआ ?'

नन्द०—' बात तो योंही है; परन्तु लोग विजातीय सम्बंध पर आपत्ति करते हैं !'

श्रे०—' बुद्धिमान् नहीं; मूर्ख लोग करते हैं। यदि क्षत्री ब्राह्मण आदिमें विभिन्नता होती तो कभी भी ब्राह्मणी कन्यासे क्षत्री पुत्रका जन्म न होता ! किन्तु पुराण और प्रत्यक्ष बाधित है ! फिर भी न जाने तुम कैसी बातें कर रही हो !'

नन्द०—' खैर, छोड़िये इस टंटेको ! अपनी बात नहीं बताना है, तो सीधे इन्कार कर दीजिये !'

श्रे०—'अपनी बात जरूर बताऊंगा ! पर रहीं न आप युवराज्ञी ?'

नन्द०—'फिर वही बात ! मेरे भाग्यकी खिल्ली उड़ाते हैं आप ?

श्रे०—'स्वप्नमें भी यह पाप नहीं करसक्ता ! मैं तो सच कहता हूं।'

नन्द०—' तो जान गई, आपको बताना नहीं है। युवराज खुद नहीं, इसपर भी चले हैं युवराज्ञी ढूंढ़ने !' इस कटाक्षके साथ नन्दश्री उठ खड़ी हुई; परन्तु श्रेणिकने रोक लिया। वह बोले—' अच्छा मैं युवराज न सही; राजा बनलूं तब सही ! अब तो सुनो मेरी बात।'

नंदश्री–'सीधे २ बताइए।'

श्रे०–ठेढ़ बात है। सुनिए, पिताजी अरण्यमें एक भील-पल्लीमें जाफंसे। वहांके भीलराजाकी कन्याने उनका मन मोहलिया। भीलराजाने इस शर्तपर विवाह करदिया कि उसकी कन्याका लड़का युवराज होगा, इसीलिए उसका लड़का चिलातपुत्र युवराज बना-दिया गया और मुझे यह दंड भुगतना पड़ा।'

नंद०–तो क्या आप अब स्वप्नमें राजा बनेंगे? आपके पिताने भीलनीके साथ विवाह किया वही मुझे बताते हैं न आप! पर मैं जैनी नहीं–पुरोहित कन्या हूं पुरोहित! कहकर वह हंस पड़ी।

श्रेणिकने कहा–मैं भी अब जैनी नहीं हूं, बौद्धधर्मने मेरा उप-कार किया है। परन्तु मैं हूं युगवीर! कहो वीराङ्गना बननेकी मनमें नहीं है क्या? श्रेणिकका यह वाक्य पूरा नहीं हुआ था कि पुरोहित महाराज वहां आगए। नंदश्रीने इसका कुछ उत्तर न दिया।

सौभाग्यसे थोड़े ही दिनोंमें श्रेणिक राजमान्य होगए और लोग उन्हें बड़ी प्रतिष्ठाकी नजरसे देखने लगे। पुरोहित महाराज ऐसे पाहुनेको पाकर बड़े प्रसन्न हुए। श्रेणिकको वह अपना आत्मीय मानने लगे। कहना न होगा, श्रेणिक और नंदश्रीकी मनचेती होनेमें देर न लगी। उनका विवाह होगया और वह आनंदसे रहने लगे। लोगोंने इस आदर्श विवाहकी बड़ी सराहनाकी।

(३)

नंदश्रीके चिबुकको उकसाते हुए श्रेणिकने कहा–'कहो पुरोहितानीजी, आपकी जाति पांति अब कहां रही?'

नंदश्रीने कटाक्ष करते हुए उत्तर दिया—रही क्यों नहीं, कहां गई चली ? क्या लोग मुझे पुरोहित कन्या नहीं कहते ? भिन्न वंशोंमें विवाह करनेपर जब वंश नहीं मिलते तो मेरी ब्राह्मण जाति क्यों मिटगई ?'

श्रे०—'सचमुच आज तो श्रीमती पंडितानी बनगई हैं; पर तब क्यों इस सम्बन्धसे बहकतीं थी ?'

नन्द०—' मैं क्यों बहकती ? पुरुष हो न, समझो क्या हमारी बातें ?

" हां ठीक है; " श्रेणिकने कहा, प्रेमसे एक मीठा चपत लगाते हुये, "तो वे सब बातें मेरे प्रेमकी परख थीं ।"

नंदश्री—' आप ही समझिये । मैं अब 'पुरोहितानी' नामसे चिढूंगी नहीं । मेरा ' अभय ' बड़ीसे बड़ी क्षत्रियानीकी कोखके जन्मे पुत्रसे कुछ कम थोड़े ही है ।'

श्रेणिकने अभयको गोदीमें लेते हुये कहा—' अब तो मेरी ही बातें दुहरा रही हो—ठहरीं न स्त्री आखिर....।'

श्रेणिक बात कर ही रहे थे कि पुरोहितजीके आनेका आहट मालूम दिया । दूसरे क्षण वह प्रसन्नचित्त सामने आ खड़े हुये । और मारे खुशीके उनकी आंखें चमक रही थीं । वह बोले— ' आर्यपुत्र ! तेरी जय है ! मगधराष्ट्रके अमात्य और पुरजन तेरी बाट जोह रहे हैं । मगधका राजसिंहासन सूना पड़ा है । चल बेटा ! उसको सुशोभित कर । बेटी नंदश्रीको महारानी देखकर मैं फूले अंग न समाऊंगा !'

श्रेणिकने अपने भाग्यको सराहा और 'तथास्तु' कहकर वह उठ खड़े हुये। मगधके अमात्योंने उनका स्वागत किया! वह तत्क्षण राजगृहको चले गये।

(४)

राजगृहमें खुशियां मनाई जा रही थीं। श्रेणिक अब मगधराष्ट्रके सम्राट होगये थे। दूर और नजदीक सब स्थानोंके राजाओं और उमरावोंने आकर उन्हें नजरें भेट कीं और उनके झण्डेके नीचे आ इकट्ठे हुये! बड़ा शाही दरबार लगा! याचकों और बन्दीजनोंके भाग्य खुल गये। मगधराज्यकी प्रजा बड़ी सुखी हुई। सम्राट श्रेणिकने निश्चय किया कि वैशालीके लिच्छवि संघ पर आक्रमण करना चाहिये; क्योंकि मगधकी राजव्यवस्था शिथिल जानकर उसकी सीमाका उल्लंघन करके उनने अन्याय किया है। सेनापतिने सेना सजा ली! दूतोंने लिच्छवि संघको खबर कर दी! वे भी मोर्चेपर आ डटे! लड़ाई होने लगी! किंतु लिच्छवि संघपति राजा चेटक और सम्राट श्रेणिककी बुद्धिमत्तासे दोनों महाशक्तियोंमें संधि होगई। दोनों राज्य खूब फलेफूले! इनमें घनिष्टता भी बढ़ गई। श्रेणिकका विवाह चेटककी कन्या राजकुमारी चेलनासे होगया। चेलनाके साधु प्रयत्नोंसे श्रेणिक और नन्दश्री जैन धर्मका आदर करने लगे। उनके दिन सुखसे बीतने लगे। अभयकुमार युवराज होगये!

एक रोज नगरवासियोंने देखा कि राजपरिकर बड़ी सजधजसे विपुलाचल पर्वतकी ओर जारहा है। सम्राट् श्रेणिक हाथीपर

बैठे हुए हैं और उनकी बगलमें सम्राज्ञी चेलना बैठी हुई है। लोगोंको उत्सुकता बढ़ी। उन्होंने प्रतिहारीसे जान लिया कि राज-परिवार युगवीर भगवान महावीरको वंदनाके लिए जारहा है। यह सुनकर वे भी साथ होलिए। 'यथा राजा तथा प्रजा' की उक्ति चरितार्थ हुई। भगवानकी वंदना करके सब कृतार्थ हुए। सम्राट् श्रेणिकको मुख्य श्रोता होनेका श्रेय मिला और युवराज अभय-कुमार भवबंधन मुक्त होनेके लिए दिगंबर मुनि होगए। वे आत्म-स्वातंत्र्यके पथ लगगए। शेष जन सानंद घर लौट आये।

महाराज्ञी चेलनाका पुत्र अजातशत्रु युवराज बनादिया गया। श्रेणिक उनके सहयोगसे कुशलता-पूर्वक शासन करते रहे। उन्होंने कई लड़ाइयां लड़कर अपने राज्यको बढ़ालिया और जैन मंदिर, धर्मशाला, विद्यालय आदि स्थापित कराकर अपना नाम अमर करलिया। भारतीय इतिहासमें विश्वसनीय और सर्व प्रथम सम्राट् होनेका गौरव उन्हींको प्राप्त हुआ। किन्तु अजातशत्रुने उन्हें अंतसमय बड़ा कष्ट दिया था। इसी कारण वह अकालमृ-त्युके ग्रास हुए। वह आगामीकालमें तीर्थंकर होंगे।

सम्राट् महानन्द !

दरबानने झुककर सम्राट् महानंदको तीनवार प्रणाम किया और वह बोला—सम्राट्की जय हो ! लोकमें जिनकी धवलकीर्ति फैली हुई है और नंदसाम्राज्यके जो रत्न हैं तथापि विद्वानोंके मुकट हैं वह पाणिनि पाटलिपुत्रकी सीमामें आपहुंचे हैं !

'हां, पाणिनि आगए !' सम्राट्ने कहा—बड़ी खुशीकी बात है, उनको स्वागतपूर्वक राजसभामें उपस्थित करो !'

'तथास्तु !' कहकर दरबानके साथ प्रमुख अमात्य उठकर चला गया। दरबारी लोग उत्सुकतासे पाणिनिके शुभागमनकी वाट जोहने लगे। देर न लगी कि बाजोंकी हर्षध्वनि उनको सुनाई पड़ी। साथ ही उन्होंने सुना जनताकी जयध्वनिको ! देखते ही देखते एक कृषकाय गौरवर्ण ब्राह्मण राजसभामें आ उपस्थित हुआ। दरबारी लोग आंखे मलने लगे ! उनका मन न कहता 'यही विश्वविख्यात पंडितप्रवर पाणिनि हैं।' दरबारियोंकी इस शंकाको भङ्ग करनेके लिये ही मानो नवागन्तुकने उच्च और गम्भीर स्वरमें सम्राट्को आशीर्वाद दिया। सम्राट्ने उठकर उनका स्वागत किया, लोगोंने देखा वही पंडितप्रवर पाणिनि थे ! सबने उनका अभिवादन किया। वह सम्राट्के निकट आसनपर बैठ गये।

सम्राट्ने उनकी यात्राके कुशल समाचार पूछे ! उत्तरमें पाणिनि बोले—'राजन ! तेरे सुव्यवस्थित और शान्तिमई राज्यमें मेरी यात्रा बड़े अनन्दसे पूरी हुई ! तक्षशिलासे यहांतक राजमार्ग यात्रियोंके लिए निष्कण्टक और सब सुभीते किये हुये हैं ! प्रजाजन तेरे इस वात्सल्यके लिये कृतज्ञ और प्रसन्न हैं !'

सम्राट्—'धन्य है ! किंतु मैं तो प्रजाका एक तुच्छ सेवक हूं और अपना कर्तव्यपालन कर रहा हूं !'

पा०—'ठीक है, सम्राट् ! आर्य-नृपका सदा यही आदर्श रहा है और इसी नीतिसे राम-राज्य सदा फूलाफला है !'

स०—महाराजके इस अनुग्रहके लिए आभारी हूं। दया करके बताइए कि तक्षशिलाके विश्वविद्यालयकी क्या दशा है ?

पा०—प्रभो ! वह खूब उन्नतिपर है। देश विदेशोंके छात्रगण वहां वेद वेदांग, दर्शन व्याकरण, शिल्प-शास्त्र, सब ही विद्याओंका अध्ययन कररहे हैं। संसारके श्रेष्ठ विद्वानोंके संसर्गसे तक्षशिलाकी कीर्ति कौमुदी भुवन-विख्यात है !'

स०—मुझे यह सुनकर बड़ा हर्ष है। किन्तु पंडितरत्न ! यह तो बताइए कि वहां किन श्रेणियोंके छात्र अधिक हैं ?

पा०—सम्राट् ! यह न पूछिए ! प्रत्येक विषयका अध्ययन करनेके लिए वहां राजासे लेकर रंकतक पहुंचता है। ब्राह्मण, क्षत्री, वैश्य, शूद्र प्रत्येक वर्णके छात्र यथायोग्य शस्त्र-शास्त्रका अध्ययन करते हैं।

स०—तो यह खुशीकी बात है, मेरी गरीब प्रजा भी समुचित

शिक्षा ग्रहण कररही है, यह जानकर मुझे संतोष है । मैं विश्व-विद्यालयके आचार्योंका आभारी हूं ।

पा०—सम्राट्के अनुग्रहसे हम लोग किंचित् राष्ट्रकी सेवा कर रहे हैं ।

म०—ठीक है, अब आप विश्राम कीजिए और राजधानीका अवलोकन कर अभिप्रायसे सूचित कीजिए ।

'सम्राट्की महती कृपा !' कहकर पाणिनिने आशीर्वाद दिया और अतिथि-गृहमें जाकर विश्राम करने लगे ।

(२)

ईस्वीपूर्व सन् ४०८की यह घटना है । नंदसाम्राज्य तब पेशावरसे लेकर जगन्नाथपुरीतक विस्तृत था । सम्राट् महानंद उस-पर समुचित शासन कररहे थे । उन्हींके राज्यकालमें संस्कृतभाषाके महापंडित पाणिनि तक्षशिलासे पाटलिपुत्र आए थे । तक्षशिला उनकी जन्मभूमि थी और पाटलिपुत्र नंद-साम्राज्यकी राजधानी ! सम्राट्ने उनका स्वागत करके उन्हें अतिथिगृहमें भिजवा दिया । उपरांत राजसभा भङ्ग हुई और सम्राट् भी उठकर रनवासकी ओर चले गए ।

रनवासके सिंहद्वारपर जब सम्राट् महानंद पहुंचे तो वह क्षणभरके लिए किंकर्तव्यविमूढ़ हुए खड़े रहगए । आत्म-संरक्षक भयातुर हो बगलें झांकने लगे ! उन्होंने देखा कि सम्राट् एकटक सामनेकी ओर देखरहे हैं । उस ओर किसीकी कुल-स्त्री यथा पूर्णमासीका चंद्रमा छिटका हुआ है । दूसरे क्षण उस कमनीय-

शीतल ज्योत्सनामें सम्राट् अगाड़ी बढ़ने लगे। कलाधर भी निकट आता गया। संरक्षकोंने देखा कि राजनापितकी वृद्धा माता उस कमनीय-चंद्रमुखीके साथ चली आरही है। सम्राट्को आता हुआ देखकर वह एक ओर हटगई। बुढ़ियाने झुककर प्रणाम किया। उसने घूमकर देखा कि कन्या भी मस्तक झुका चुकी है। सम्राट्ने उद्वेगसे कहा–'ओ हो, आप हैं!' बुढ़िया कृतज्ञताके बोझसे दबगई। उसने फिर प्रणाम किया। सम्राट्ने पूछा–आपके साथ ये कौन हैं? बुढ़िया बोली–अन्नदाताके चाकरकी पुत्री मुरा है। सम्राट्ने एकवार गौरसे उसकी ओर देखा और दोनों अपने रास्ते लगे। चंद्र दूर चलागया, परन्तु हां सम्राट्में वह अपने प्रेमीको पीछे छोड़गया। ठीक है, अपावन ठौरपर भी पड़े हुए कंचनको हरकोई चाहता है?

(२)

वसंतके दिन थे। राजोद्यान फूला नहीं समाता था। भला ऐसे सुहावने अवसरपर वायुसेवनका रस क्यों न लूटा जाता? उसपर सम्राट् महानंद चन्द्रमुख-मरीचिकी शीतल छायासे दूर होगए थे। उन्हें महलोंके सुन्दर और सजेसजाए कमरे कालकोठरी कैसे जंचते थे! अपने संतप्त मनको शांति देनेके लिए वह राज्योद्यानमें पहुंच गए। वहांपर कभी माधवीलताके प्रणयको देखकर मुग्ध हो नाचने लगते और कभी मालती कुञ्जमें जाकर उस चन्द्रमुखकी यादमें मग्न होजाते। सहसा वह उठे और अपने सामनेवाले कुञ्जकी ओर लपक गए। उन्होंने देखा, कोई उसमें बातें कररहा है। उन्होंने सुना–'अब वह जमाना नहीं रहा।

दूसरोंके इशारेपर क्यों नाचा जाय ? हम भी मनुष्य हैं, हमारे पास भी मनुष्य शरीर है। और शरीरमें वह विवेक बुद्धि है; जिसपर ताला जड़कर अपनेको ऊंचा माननेवाले लोग हमें पैरों तले दलते और अपने इशारोंपर नचाते हैं। भला बताये न कोई, हममें और उन स्वार्थी लोगोंमें क्या अन्तर है ?'

'अन्तर क्यों नहीं है ? देखो, वह हमपर उल्लूकी लकड़ी फेर अपना स्वार्थ साधन करते हैं या नहीं ?'

'इसीका तो प्रतीकार करना है; किन्तु यह जन्म-सुलभ कोई अन्तर नहीं है, जिसपर ऊंच या नीचपनकी बात तुली हो। ऊंचे बननेवालोंमें भी भोंदू क्या मिलते नहीं ?'

"ठीक है, भाई ! भला हो उन भगवान महावीरका जिन्होंने यह सत्य सुझा दिया।

'हां'—और इसके साथ सम्राट्ने सुना कि कुञ्जके लोग बाहर निकलनेका उपक्रम कर रहे हैं। बस, वह भी दूसरी ओर चल दिये। प्रजाकी मनोवृत्तिकी इस झांकीपर मन ही मन विचार करते हुये, वह एक ओरको चले जारहे थे। इस विचारदशासे निकलकर उन्होंने देखा, तो सहसा अपने नेत्रोंपर विश्वास न किया ! यह तो वही मुखचन्द्र है जिससे वंचित हो वह तिलमिला रहे थे। मनचाही होती देखकर सम्राट् अपनेको रोक न सके। वह उस ओर बढ़ गये और उनके हाथोंने मुख-चन्द्रको ढक दिया। बेचारी मुरा बड़ी घबड़ाई ! दूसरे क्षण अपनेको संभालकर वह मुड़ी, तो सम्राट्को सन्मुख खड़ा देखकर वह पानी पानी होगई !

सम्राट् बोले—'मुरा ! डरो न ! मैं तुम्हारा हूं—मुझसे संकोच न करो ।' मुराके ऊपर सम्राट्के इन शब्दोंने दोघड़े पानी उलटनेका काम किया—वह खोईसी वहां खड़ी थी । सम्राट्ने उसके मौनसे लाभ उठाया । वह उसके पास बढ़ गए और ज्यों ह उसका हाथ उन्होंने अपने हाथमें लिया, सनसे विजली मुराव शरीरमें दौड़ गई ! उसे काठ मार गया ! सम्राट्ने कहा—' प्यारं मुरा, मैं तुम्हें रानी बनाऊंगा ! तुम संकोच न करो !' मुरा फि भी न बोली ! सम्राट् अपने आपको भूल चुके थे । मुराको वह अपने बाहुपाशमें सुरक्षित करना चाहते थे कि उसी समय किसीर्क आहटने मुराकी समाधि भङ्ग करदी ! वह दुर हट गई ! सम्राट चौंके ! उन्होंने देखा, राजमंत्रीको अपने सम्मुख ! क्रोधसे वह अपने होंठ काटने लगे ! राजमंत्रीने अभिवादन करके कहा—' स्वामीवे वायुसेवनमें विघ्न डालकर मैंने बड़ा अपराध किया है; परन्तु.... !

'परन्तु—परन्तु कुछ नहीं', कड़ककर सम्राट् बोले—'सीधे बताओ ऐसा भारी क्या काम आगया, जिसके लिये तुम यहां चले आये ?'

' दीनानाथ ! साम्राज्यपर विपत्तिके बादल इकट्ठे होरहे हैं । कौशल और विदेहके राज्य युद्धकी भारी तैयारियां कर रहे हैं।....

सम्राट्ने झुझलाकर बीचहीमें कहा—'यह कोई नई बात नहीं है । यह तुम मुझसे कह चुके और मैं इसपर विचार कर रहा हूँ।'

मंत्रीने कहा—'सम्राट् !' इस विषयमें आपका निश्चय जाननेके लिये ही मैंने आपकी उदार आज्ञासे लाभ उठाया है ।

सम्राट्को येनकेन यह बला टालना थी । और राजमंत्रीको

दण्ड देनेका उन्हें साहस नहीं था; क्योंकि उन्होंने स्वयं ही आवश्यक कार्योंके लिए हरसमय हरस्थानपर मिलनेकी आज्ञा मंत्रियोंको दे रक्खी थी! बस, उन्होंने राजमंत्रीको संधिकी बातचीत करनेकी आज्ञा देकर वहांसे टाल दिया! और राजमंत्रीके पीठ फेरते, उन्होंने मुराके लिये आंखें फैलाईं! चारों ओर देखा, पर मुरा उन्हें न दिखाई पड़ी! उनका हृदय व्याकुल हो उठा! वह घबड़ाकर अशोक वृक्षके सहारे जा टिके! वहां उन्होंने देखा, वह जीवित-चन्द्र कपड़ोंमें लिपटा हुआ पड़ा है! वह उसकी ओर झुके और देखा, मुरा बेढब रो रही है! उनके दिलका बांध टूट गया! हरतरहसे समझा-बुझाकर मुराको ढाढ़स बंधाने लगे। वह कहते—'तुझे राजरानी बनाऊंगा!' पर मुरा यह सुनकर भी न चुपती! बार २ यही सुनकर उसने बड़ी हिम्मतसे कहा—'मैं रानी नहीं बनूंगी!' सम्राट् तिलमिला उठे—प्यारसे बोले—"भला क्यों नहीं बनोगी?" वह बोली—"राजरानी बनकर मैं राष्ट्रका अहित नहीं करूँगी।"

सम्राट्ने पूछा—'तुम्हारे राजरानी बननेसे राष्ट्रका अहित क्या होगा?'

"क्या होगा?" इन शब्दोंके दुहराते हुए मुराके नेत्रोंमें दिव्य ज्योति चमक गई! फिर वह बोली—"सोचो सम्राट्! मैं आपके मार्गमें अचानक आगई, इसपर ही आप राष्ट्रको भुला बैठे हैं! फिर मुझे हरसमय अपने पास रखकर न जाने राष्ट्रका कितना भारी अहित आप कर डालेंगे! मुझे क्षमा कीजिये!"

मुराके यह शब्द सम्राट्के मर्मस्थलमें घुस गये! उन्होंने प्रतिज्ञा की 'कोई भी वस्तु उन्हें राष्ट्र-हित साधनसे पीछे नहीं

हटा सकेगी।' उनकी यह प्रतिज्ञा क्षणिक थी या स्थाई! यह तो हम नहीं कह सके; परन्तु हां, मुरा इसे सुनकर प्रसन्न हो गई! सम्राट्के मुखपर भी हर्ष नाचने लगा! दूसरे क्षण अपने चन्द्रके शीतल स्पर्शमें वह स्वर्गसुखका आनन्द लूट रहे थे! आकाशमें तारे एक एक करके चमकते जारहे थे और कलाधर मानो अपने प्रतिद्वन्दीसे ईर्षा करके मुँह छिपाये थे!

(४)

सम्राज्ञी मुराने पूछा—'आर्यपुत्र! स्तूप-विहारके तैयार होनेमें अब क्या देरी है?'

सम्राट्ने कहा—'वह तैयार होगया और शुभमुहूर्तमें शीघ्रही उसका उद्घाटन कार्य हो जायगा! किन्तु मैं उसमें सम्राट् नंदिवर्द्धन् द्वारा कलिङ्गसे लाई हुई श्री अग्रजिनकी मनोज्ञ प्रतिमाको विराजमान करना चाहता हूं।'

मु०—'हां, आपका यह विचार सचमुच बड़ा अच्छा है!'

स०—'तो बस उपयुक्त वेदीके बनते ही प्रभावनोत्सव हो जायगा। शायद तुमने उसे देखा नहीं है! चलो, एक रोज उसे देख भी लो!'

मु०—'जैसी आपकी आज्ञा!'

स०—'ओहो, आज आज्ञा? और उस रोज उद्यानमें आज्ञा सुनकर रोती थीं!'

मु०—'आज्ञा सुनकर? जरा महाराज! याद तो कीजिये! अभी कोई युग नहीं बीता है!'

सम्राट् हंस पड़े! उन्होंने देखा पद्म आरहा है। उसे देखकर

मुराने कहा—'पद्मको किस आचार्यके सुपुर्द किया है? वह तो उद्दण्ड होता जारहा है!' सम्राट्ने उत्तर दिया—'उद्दण्ड नहीं, वह बड़ा पराक्रमी होगा! पर आज वह अनमनासा क्यों है?'

पद्म बाल-सुलभ अपनी माताकी ओर बढ़ा चला आरहा था। पिताजीको वहां देखकर, वह ठिठक गया। प्रणाम करके वह लौटने लगा। मुराने कहा—'पद्म! लौटे क्यों जाते हो? क्या बात है? आओ, यहां आओ!'

पद्म रुक गया, सम्राट्ने बढ़कर उसे अपने पास खींच लिया। वह बोले—'बेटा पद्म!* आज क्या बात है?' पद्म यह सुनकर रोने लगा। सम्राट् और मुरा बड़े हैरान थे। मुराने उसे अपनी छातीसे लगा लिया और पूछा—'बच्चा! क्यों रोते हो?' बहुत देरमें पद्मने रोते२ उत्तर दिया—'मैं उस आचार्यके पास नहीं पढ़ूंगा!' मुराने प्यारसे कहा—'मत पढ़ियो, बेटा! पर बता तो क्या हुआ?' पद्म बोला—'आचार्य महाराज तो अच्छे हैं मां! पर, उनके यहां पुरोहित-पुत्र बहुत हैं। वह मुझे बुरे२ कहते हैं!'

मु०—'तुझे बुरा कहते हैं?'

प०—'हां, मां, कहते हैं, 'तू नीच है' 'तुझे कोई राजा नहीं बनायेगा।'

मु०—'और तेरे आचार्य कुछ नहीं कहते?'

प०—'उनके सामने कोई कुछ कहे तब न?'

---

* मुराका पुत्र महापद्म था। कोई२ विद्वान् चन्द्रगुप्त मौर्यको मुराका पुत्र बतलाते हैं, परंतु यह गलत है। (देखो अर्ली हिस्ट्री ऑफ इंडिया पृ० ४१-४६)

मु०—'तो तुम रोते क्यों हो ? वे उद्दण्ड लड़के तुझे बुरा कहते हैं; तू राजपुत्र है, उन्हें दण्ड दे ?'

प०—'उन्हें मारा तो था मैंने ! इसीसे वह आचार्यके पास गये हैं !'

मु०—'जाने दे ! तू आचार्य महाराजसे उनकी नटखटीकी बात कह देना ! आचार्य तो कुछ नहीं कहते ?'

प०—'ना मां, वह बुरा नहीं कहते । वह तो कहते हैं, 'तू बड़ा राजा होगा' 'लोग तुझे महापद्म कहेंगे ।' मां, मैं खुब लड़ाई लड़ूंगा और सबको जीत लूंगा !'

सम्राट् और सम्राज्ञीने कहा—'शाबास !' पद्म खुश होकर खेलने लगा ! मुराने अर्थभरी आंखोंसे सम्राट्की ओर देखा ! सम्राट्के नेत्रोंमें भी आश्वासनका भाव चमक गया ! राजपरिवार प्रसन्न होगया !

(९)

पाटलीपुत्रमें बड़ा भारी उत्सव हुआ। पद्मको युवराज तिलक होगया ! दूर दूरके राजाओं और विद्वानोंके समागमसे पाटलिपुत्र खिल उठा ! प्रजाने खुशियां मनाईं ! लोगोंने देखा, उनके भावी सम्राट् उदार और महापराक्रमी होंगे । हुआ भी यही ! सम्राट् महानन्दके बाद पद्म ही मगधके राजसिंहासनपर बैठे । कौशल, विदेह आदि देशोंको उन्होंने जीत लिया। मगधकी श्रीवृद्धि हुई। दिशायें फूल उठीं । सबने अपने भाग्यको सराहा। किसीको याद भी न रहा कि वह मुरा-पुत्रके राज्यमें है । हां, किन्हीं पुरातन पुरोहितोंके हृदयमें ईर्ष्याग्नि अवश्य धधक रही थी। अन्तमें उसीसे नन्द साम्राज्यका अन्त हुआ !

कुरुम्बाधीश्वर।

(१)

द्राविड़ देशका टोन्डमण्डल प्रांत ऊँची नीची पहाड़ियों और हरी भरी उपत्ययिकाओंसे लहलहा रहा था। उन पहाड़ियों और उपत्यायिकाओंपर इस देशके आदिम निवासी कुरुम्ब लोगोंके छोटे मोटे घरोंके समुदाय बिखरे पड़े थे। इन लोगोंमें बहुधा भेड़-बकरी पालनेका व्यवसाय प्रचलित था! इतनेपर भी यह लोग अपनी असभ्य रहन सहनको नहीं भूले थे। भोजनके लिये वन जंतुओंका शिकार करनेमें उन्हें बड़ा मजा आता था। वे तनको कपड़ोंलत्तोंसे अच्छी तरह ढकना भी नहीं जानते थे। किन्तु हायरे मायामोह! तेरी कृपा उनपर भी होगई! कुरुम्ब आपसमें लड़ने लगे! भूखे भेड़िये जैसे एक भेड़को पाकर आपसमें लहूलुहान हो जाते हैं; कुरुम्बोंका भी ठीक वैसा ही हाल होरहा था! कुरुम्ब स्त्रियां और असहाय बालक यह भयानक मारामारी निरुपाय हो देख रहे थे! बन पड़ता तो अपने प्रियतम बंधुका वे भी हाथ बंटा लेते! उन्हींका भाग्य कहिये, पड़ौसके अरण्यमें समाधिलीन साधु महाराजका ध्यान उनकी ओर चला गया! वे उठे और कुरुम्बोंकी पल्लीमें बेधड़क पहुंच गये! कुरुम्ब लोग आपसमें इन महात्माको देखकर लड़ना भूल गये! साधु महाराजके शांत तेज और नग्न

रूपने उन्हें भौंचक्कासा बना दिया। वह उनके बीचमें जाकर खड़े होगये। कुरुम्बोंके मस्तक उनके सामने अपने आप झुक गये। साधु महाराजने आशीर्वादमें उन्हें 'धर्मलाभ' दिया और वह बोले—'भाइयो! इस दुर्लभ मनुष्य तनको तुम आपसमें लड़-कटकर कौड़ी मोल गवां रहे हो; यह देखकर मुझे बड़ा आश्चर्य है। भला बताओ तो, तुम आपसमें क्यों लड़ते हो? यह भेड़ें तुम्हारी हैं। इन्हें देखो, यह कैसे प्रेमसे रहती हैं। और तुम, इनके मालिक आपसमें लड़ते हो। सोचो, क्या तुम इन भेड़ों जितनी भी बुद्धि नहीं रखते?'

साधु महाराजके इन शब्दोंको सुनकर कुरुम्बगण एक दूसरेका मुँह ताकने लगे। एक क्षणके लिये पूर्ण शांति छागई। दूसरे क्षण उनमेंसे एक युवकके अगाड़ी आते ही वह भंग होगई। युवकका उन्नत भाल और मुखप्रभा अनूठी थी। उसने कहा—'महाराज! आपका कहना हमें सिरमाथे है। हम भी बड़े प्रेमसे रहते थे; परन्तु इन भेड़ोंके मारे ही आज हम आपसमें कटे-मरे जारहे हैं!'

साधु महाराज बोले—'भाई! भेड़ोंने तुम्हारा क्या बिगाड़ा है?'

युवक—'महाराज! न यह होती, न हममें मारामारी होती! इनके बांट चूँटके लिये ही तो हममें नित नये झगड़े खड़े होते हैं!'

साधुने कहा—'तुम भूलते हो, बच्चे! भेड़ें विचारी निर्मूक पशु हैं—वे तुमसे लड़नेको नहीं कहतीं; बल्कि जो तुम रूखा-सूखा उन्हें खानेको देदेते उसीपर संतोष कर लेती हैं। कहो, है न यह बात ठीक?'

युवक—'मालूम तो ठीक होती है' पर....

सा०—'पर क्या ? यह तुम्हारी भूल है; तुममें असंतोष है—तुम एक दूसरेका माल हड़पना चाहते हो, इसीसे लड़ते हो ! भेड़ें तो तुम्हें अपने मूक जीवनसे संतोषी और शांतिमय रहना सिखाती हैं ! तुम हो तो मनुष्य कहनेको; पर तुम्हारा जीवन इन भेड़ोंसे गया बीता है ! अब कहो, भेड़ें तुम्हें लड़ाती हैं ?'

सब कुरुम्बोंने कहा एक स्वरमें—'नहीं महाराज ! आज हम अपनी गलती समझें !' युवक भी उनके साथ था । वह बोला—'दीनानाथ ! आज आपने हमारी अक्लपरसे परदेको हटा दिया ! भेड़ें ही क्या, शिकारपर भी तो हम आपसमें लड़ मरते हैं ! हममें संतोष नहीं, बस इसीलिये हम एक दूसरेकी भेड़ें चुराते, एक दूसरेको मारते-काटते और न जाने क्या २ करते हैं ! महात्माजी ! अब आप हमें ऐसा उपाय बतांय, जिससे हम लोग संतोषी जीवन बितायें !'

साधुमहाराजने कहा—'बच्चे, अब तुम ठीक रास्तेपर आये । अब हम तुमसे एक बात पूछते हैं; बताओगे ?'

युवक—'हां महाराज ! अवश्य बतायेंगे !'

साधु—'देखो, तुम्हें कोई मारे तो क्या तुम्हें अच्छा लगेगा ?'

युवक—'अच्छा लगेगा ? खूब कहा महाराज ! मैं उसके प्राण ले लूंगा !'

साधु—'और दूसरा तुम्हारे प्राण ले, तो तुम्हें भी कुछ बुरा नहीं लगेगा ?'

युवक—'नहीं महाराज ! सो कैसे ? प्राण बड़े प्यारे हैं, उसे सेंतमेंत ही थोड़े देदूंगा !'

साधु–'तो फिर तुमने यह कैसे जाना कि दूसरेको अपने प्राण प्यारे नहीं होंगे, जो तुम उनको मार डालते हो ?'

युवक–'होंगे क्यों नहीं ?'

साधु–'यदि उनको अपने प्राण प्यारे तुम मानते हो, तो फिर उनको मारना क्या ठीक है ?'

युवक–'नहीं तो ! पर एक बात है, वह हमको मारे तब तो उन्हें मारना ही ठीक है ।'

साधु–'ठीक तो इस हालतमें भी उनको न मारना ही है ! लेकिन हां, तुम गृहस्थ हो–तुम्हारे पास धन सम्पदा है–उनका संरक्षण करना तुम्हें जरूरी है । इसलिये जहांतक बने वहांतक उन्हें कमसेकम दण्ड देकर ठीक रास्तेपर लेआओ और न माने तो फिर आत्मरक्षाके लिये सब ही कुछ करना पड़ता है !

युवक–'हां महाराज ! यह आपने ठीक कहा !'

साधु–'ठीक कहा, सो तो सही ! पर कहने सुननेसे ही काम न चलेगा ! तुम सब इस बातकी प्रतिज्ञा करो कि 'हम सब प्रेमसे रहकर संतोषी जीवन बितायेंगे–अकारण जानबूझकर किसीके प्राण नहीं लेंगे । मांस, मधु और मदिराको छूयेंगे भी नहीं !'

युवकने कहा–'महाराज, मैं यह प्रतिज्ञा करता हूं ।' उसके बाद अधिकांश कुरम्ब स्त्री-पुरुषोंने यह प्रतिज्ञा दुहराई ! पर जिनकी मतिपर पत्थर पड़े थे, वह टुकर २ निहारते रहे ! साधु महाराज उठे और जिधरसे आये थे उधरको चल दिये ! भक्तवत्सल कुरुम्बोंने शीश नवा दिया !' भेड़ें मिमियां दीं; मानो उन्होंने अपने प्राणदाताको पहचान लिया !

(२)

कुरुम्बोंका जीवन अब एक दूसरे ढांचेमें ढल गया। उन थोड़ेसे बचेखुचे कुरुम्बोंको छोड, बाकी सब जैनाचार्यकी बताई हुई प्रतिज्ञापर दृढ़ रहे। उनके जीवन आनन्दसे कटने लगे। उन्होंने देखा, उनकी भेड़ोंकी संख्या बढ़ रही है। वे दूध भी पहलेसे ज्यादा देने लगी हैं। न उनमें लड़ाई है और न झगड़ा। आनंदसे वे जीवन विता रहे हैं और मिलकर अपने व्यवसायको उन्नत बना रहे हैं। वनोंमें वे घूमते हैं, तीरतरकस उनके हाथमें रहता है; किन्तु निरपराध पशुओंका अब वह काल न रहा। हां, जहां कोई कुरुम्ब युवक देखता कि भेड़िया मेमनेको दबोचनेकी फिराकमें है, झट उसके धनुषकी प्रत्यंचाकी टंकोरसे वन गूँज उठता। किन्तु इन कुरुम्बोंकी यह उन्नति उन साथियोंसे नहीं देखी गई जो अपनी मांस खानेकी चाटुकारितासे विलग नहीं हुये थे। उन्हें जिस रोज शिकार न मिलता, वे अपने गल्लेकी भोली भेड़की गरदनपर छुरी नाप देते! और जब अपने पेटमें उसकी कब्र बनाकर वे अपने पड़ोसीपर अहिंसक सजातियोंकी भेड़ोंको देखते तो उन्हें अपने गल्लेसे ज्यादा पाते! डाह उनके दिलोंको जलाने लगती। कुछ दिनों तक हालत यह ही चलती रही। ईंटोंका अवा अथवा ज्वालामुखीकी तरह वे भीतर ही भीतर उफनते रहे। एक रोज वह बाहर उबल पड़े! अहिंसक कुरुम्बोंने सोचा, यह भूखे भेड़ियोंका झुण्ड उनके गल्लेपर कहांसे टूट पड़ा? दूसरे क्षण उन्होंने देखा, यह तो उनके असंतोषी साथी ही भेड़िये बने हुये हैं। तब उन्हें समझ पड़ा, मनुष्य

और नृशंस पशुरूप मनुष्यका भेद । वह उन नर-भेड़ियोंको ठीक रास्तेपर लानेके लिए उनसे जूझने लगे । भयानक मुठभेड़ हुई । पर थोड़ी ही देरमें नरभेड़िये अपने २ घरोंको भागते दिखाई दिए । अहिंसक कुरुम्बोंने उनमेंसे जितनोंको बनपड़ा पकड़लिया । वे उन्हें उचित दंड देने लगे । बलपूर्वक संतोष और दयाका मीठा घूंट उनके गलोंके नीचे उतारने लगे । किसीको यह भी सुधबुध न थी कि उनके इस भले या बुरे कामको कोई और भी देखरहा है ! किंतु सहसा वही युवक चौंकपड़ा, ज्योंही एक मुलायमसा हाथ उसके कंधेपर पड़ा ! उसने देखा यह तो गुरु महाराज हैं । वही जैनाचार्य हैं जिन्होंने उन्हें आदमी बनादिया है । वह झट उनके पैरोंपर गिरपड़ा और कुरुम्बोंने भी यह देखा, वे भी दौड़े-आए और साधु महाराजके पैरों पड़गए। जैनाचार्यने उन्हें धर्मलाभ-रूप आशीर्वाद दिया । युवक बोला—'महाराज ! आपके दर्शन पा हम बड़े खुशी हैं । आपकी शिक्षाने हमें आदमी बनादिया ।'

आचार्य—आदमी होकर भी तुम खून बहारहे हो ?

यु०—महाराज, हमने जानबूझकर खून नहीं बहाया । हमारे साथी नरभेड़ियोंने आपकी हितभरी बात नहीं मानी और वे हमारे और हमारी भेड़ोंके प्राणोंके गाहक बनगए । उनको ठीक सबक देनेके लिए महाराज हमें विवश हो यह करना पड़ा है ।

आ०—अच्छा मैं समझा बेटा ! लेकिन इस खूनको बिना बहाए भी तुम उन्हें ठीक रास्तेपर ले आसक्ते थे !

यु०—ना महाराज, यह बात संभव नहीं थी ।

आ०—हिम्मत बांधनेसे असंभवसा दिखता हुआ कार्य संभव होजाता है। ये तुम्हारी भेड़ें लेते थे, लेकेने देते। फिर कहते भाई! अब तुम्हें संतोष होगया? न हुआ हो तो अभी और लेलो। पर एक बात है, अब फिर कभी यह लुकाछिपी न करना। यह भी आखिर मनुष्य हैं, तुम्हारी बातसे कायल होजाते।

यु०—शायद महाराजका कहना ठीक हो।

आ०—खैर, अब अगाड़ीके लिए एक काम करो। सब कुटुम्ब मिलकर एक राजा चुनलो और अपने गांवोंके हिसाबसे सरदार भी नियत करलो। राजा और सरदार मिलकर तुम्हारी रक्षाका प्रबंध करेंगे और तुम्हारे झगड़े वह जल्दी निबटा दिया करेंगे।

यु०—'हां, यह बात आपने ठीक बताई!'

आ०—'ठीक है न! अच्छा, इसके साथ एक कार्य और करो! जहां तुम्हारा यह चुना हुआ राजा रहे, वहां एक अच्छासा मकान बना लो; जिसमें तुम्हारा सबका दरबार लगे! और उस दरबारके पड़ोसमें एक मंदिर बनवा लो; जिसमें जाकर कुरुम्ब लोग उपाध्याय महाराजसे शिक्षा ग्रहण किया करें और वहां भगवान्‌का पूजन-भजन करें।'

यु०—'इसमें महाराज, दरबारका मकान बनानेकी बात ठीक है; परन्तु मंदिर हम कैसे बनावें। देशका राजा हमें दण्ड देगा न!'

आ०—'राजा दण्ड क्यों देगा?'

यु०—महाराज यह तो मैं नहीं जानता पर इतना मैं जानता हूं कि एकदफे कांचीपुरके मंदिरमें मैं घुसगया तो पुजारियोंने

'मलेच्छ' 'मलेच्छ' कहकर मुझे बाहर ढकेल दिया और लगे मारते हुए राजाके पास लेजाने ! ज्यों त्योंकर मैंने अपने प्राण बचाए । अब बताइए हम अपना मंदिर कैसे बनालेंगे ?

आ०—तुम भूलते हो बच्चे ! पहले तो तुम्हें कांचीपुरके राजासे कोई संबंध नहीं । तुम्हारा राजा तो वह होगा जिसे तुम चुनोगे । वह तुम्हें मंदिर बनानेसे रोकेगा नहीं । कांचीपुरमें उन पुजारियोंने धर्मका ठेकेदार अपनेको मान लिया है, परन्तु जैन-धर्ममें यह बात नहीं है ।

यु०—यह तो महाराज आपने ठीक कहा, परन्तु जब हम कांचीपुरके राजाकी आज्ञा नहीं मानेंगे तो उसकी सेना आकर हमें सतायगी ।

आ०—इसलिए तो दरबारके मकानको मजबूत किला जैसा तुम्हें बनाना होगा और अपनी सेना भी तुम्हें बनानी होगी ।

यु०—अरे, तब तो हम सचमुच राजा होजांयगे, परन्तु सेना हम कैसे बनाएंगे ?

आ०—यह सब तुम्हें उपाध्याय महाराज सिखादेंगे । अब तुम किला और जैन मंदिर जल्दीसे बनालो ।

यु०—'अच्छा महाराज, कोशिस करेंगे; पर यह तो बताओ जैनधर्म क्या है ? उसके मंदिरमें हम 'मलेच्छ' 'मलेच्छ' नहीं होंगे क्या ?'

आ०—'साबाश बच्चे, तेरा प्रश्न बड़ा अच्छा है । सुन, बहुत पुरानी बात है, तब अयोध्याजीमें एक राजा ऋषभदेव हुये थे ।

वही सबसे पहले राजा थे। उन्होंने सबको रहना-सहना सिखाया। और वही सबसे पहले साधु हुये!'

युवक–'तो महाराज, वह बड़े भारी योगी होंगे!'

आ०–'हां बेटा, उनसे बढ़कर कोई योगी नहीं है। उन्होंने बड़ी गहन तपस्या की! वह तब बड़े भारी ज्ञानी होगये! परमात्माके सब लक्षण उनमें थे। लोग भक्तिसे उनकी वंदना करने लगे। उन्होंने दया करके अहिंसामई धर्मका उपदेश मनुष्य ही नहीं, जीव मात्रको दिया। उनकी धर्म-सभामें स्त्री, पुरुष, देव, देवी, पशु, पक्षी, सब ही आते थे और धर्म कथा सुनते थे। उन्हींका बताया हुआ धर्म जैनधर्म है।'

युवक–'अब हम समझे। पर महाराज, अब वे कहां गये? और उनके मंदिरमें कोई 'म्लेच्छ' क्यों नहीं कहा जाता?'

आ०–'सुन, ऋषभदेवने जीवोंको धर्मका स्वरूप बताकर कैलाश पर्वतपर जाकर योगसाधन किया और वहांसे वह सिद्ध परमात्मा होगये। उनके बाद और भी तेईस तीर्थङ्कर हुवे; जिनमें सबै अंतिम भगवान् महावीर थे!'

युवक–'महाराज! वह कब और कहां हुये थे?'

आ०–महावीरजी कुण्डग्रामके राजा सिद्धार्थके सुपुत्र थे। उन्हींके बताये हुये धर्मका रूप मैंने तुम्हें सिखाया है!

युवक–तो महाराज, हम म्लेच्छ नहीं कहे जांयगे!

आ०–देखो बेटा, मनुष्य मनुष्य सब एक हैं–जन्मसे उनमें कोई अन्तर नहीं दीखता। आर्य और म्लेच्छ यह भेद मनुष्योंके

गुणोंपर टिका है। जो लोग धर्म-कर्मको जानते हैं और हिंसासे पेट नहीं भरते, वे ही आर्य हैं। उनमें कर्मके लिहाजसे क्षत्री, ब्राह्मण, आदिका भेद है।

युवक—महाराज, इसे जरा और समझा दो।

आ०—अरे, यह मोटीसी बात है। जैसे अब तुमने शिकार करके पेट भरना छोड़ दिया और भगवान महावीरके धर्ममें तुम्हें विश्वास होगया है। अच्छा, अब तुममेंसे जो कोई राजा या सरदार अथवा योद्धा चुनाजाकर देश और धर्मकी रक्षाका काम करेगा, वही क्षत्री कहलायगा और जो कोई व्यापार करता रहेगा वह वैश्य होगा। ऐसे ही चार जातियोंमें मनुष्य बंटे हुए हैं।

यु०—तो महाराज अब हम आर्य हैं?

आ०—हां जरूर और शास्त्रविहित मंत्रोंसे युक्त दीक्षा देकर तुम्हें पूर्णतः आर्यसंघका सदस्य बनालेंगे।

इस वार्तालापको सुनकर कुरुम्बजनोंके नेत्र आनंदसे चमकने लगे, उन्होंने कहा—महाराजकी जय हो! जैसा आपने वताया हम वह ही करेंगे। आचार्य महाराजने 'तथास्तु' कहकर वनका रास्ता लिया। उन्होंने सोचा—जैनधर्मका सूर्य अब पुनः मध्याह्नमें चमकेगा। हुआ भी यही! कुरुम्बोंने उस युवकको अपना राजा चुनलिया और अपने ग्रामोंके सरदार भी नियत कर लिये! युवक 'कमण्डु कुरुम्ब प्रभु' नामसे प्रसिद्ध हुआ और जहां उसका दरबार स्थान वना था, उसका नाम उसने रक्खा 'पुरलूर' या 'पुलल'। वहीं पड़ोसमें एक सुन्दर और विशाल जैन मंदिर उसने बनवाया!

जैनाचार्यने उन्हें विधिवत् दीक्षा दी और उपाध्याय लोग उन्हें शस्त्र-शास्त्रमें निष्णात बनाने लगे। जैन धर्ममें आते ही उनके भाग्य खुल गये। उनकी श्री-वृद्धि खूब ही हुई।

(६)

पुरोहितों और पुजारियोंने राजा अडोन्ड चोलके दरबारमें घुसते ही चिल्लाना शुरू कर दिया। महाराजकी दुहाई है! हाय! हाय! धर्म-कर्मका नाश हुआ जारहा है! प्रभुकी दुहाई है।'

अडोन्डचोलकी भृकुटी चढ़ गई। दरबारी लोग मुंह ताकने लगे। आखिर चोलराजाने संभलकर पूंछा-'हैं! यह क्या असंभव बात मुंहसे निकाल रहे हो, विप्रगणो! मेरे जीतेजी धर्म-कर्मका नाश कदापि नहीं होसक्ता!'

सभाने नाद किया-'महाराजाधिराज अडोन्डचोलकी जय हो!'

पुजारियोंने फिर कहा-राजन्! आप समान धर्मनिष्ट नृपसे हमें यही आशा है! आप धर्मके प्राण हैं!'

अडोन्डचोलने मुस्कराकर कहा-'यह तो सब हुआ, परन्तु मतलबकी बात एक भी न बताई, विप्रो!'

पु०-'धर्मराज! क्या कहें? घोर कलिकाल है! महा अनर्थ हुआ!'

अ०-'हां, वही 'महा' अनर्थ मैं सुनना चाहता हूं!'

पु०-'राजन्, आपके पर्वतवर्ती राज्यप्रदेशमें जो कुरुम्ब नामक मांसोपजीवी म्लेच्छगण रहते थे; उन्हें एक नंगे जैनीने बहका दिया है!'

अ० 'हैं! यह धृष्टता!'

पु०—' यही धृष्टता क्या महाराज! उसने राजद्रोहके साथ२ धर्मद्रोहका भी महा अपराध किया है!'

अ०—' वह क्या ?'

पु०—'उसने उन्हें क्षत्री घोषित करके राजा बना दिया और एक मंदिर बनवाकर उसमें उन म्लेच्छोंसे पूजा-अर्चा कराने लगा है!'

अ०—'अरे, तो वह राज और धर्म दोनोंके नाशपर उतारु हुआ है। उसे एकदम शूलीपर चढ़वा दिया जायगा!'

पु०—'महाराजाधिराजकी जय हो! किन्तु एक प्रार्थना है राजन्।'

अ०—'कहो, क्या बात है विप्रगण ?'

पु०—'महाराज! वह नंगा जैनी सहज नहीं पकड़ा जासकेगा। उसने कुरुम्बोंको अच्छा सैनिक बना दिया है और उनके क़िले भी बन गये हैं!'

अ०—'विप्रमहोदय! इसकी तनिक भी परवाह न करो! चोल सेना उनका कचूमर निकाल लेगी!'

'प्रभुकी जय हो' के आशीर्वादके साथ पुजारीगण राजदरबारसे विदा होगये। राजाने उन्हें दान-दक्षिणा भेंट करके प्रणाम किया! सेनापतिको आज्ञा मिली और वह चोलसेनाको भावी रणके लिये सुसज्जित करने लगा!

(४)

कुरुम्बाधीश्वर कमण्डुप्रभूके राजदरबारके सिंहद्वारपर भीड़ लगी हुई थी! स्वयं कमण्डुप्रभु अपने सरदारोंके समेत वहां खड़े हुये थे। और वहीं एक कतारमें कई एक बन्दीजन भी उपस्थित

थे। इन लोगोंके हाथ सिर्फ पीछेकी तरफ बंधे हुये थे! देखनेमें यह अच्छे योद्धा मालूम होते थे, परन्तु सबके चहरोंपर हवाइयां उड़ रहीं थीं। इनमें सबसे पहले राजमुकुट सज्जित एक युवा था। कुरुम्बाधीश्वरने उसीको लक्ष्य करके कहा—'अडोन्ड चोलराजका नाम मैंने बहुत सुना था; परन्तु इसके पहले दर्शन पानेका सौभाग्य न आया था! आज आपको मैं अपना पाहुना बनाता हूं।' इसके साथ ही कुरुम्बाधीश्वरने चोलराजको बन्धनमुक्त कर दिया। अन्य सरदार भी मुक्त कर दिये गये! अडोन्डकी आंखें कृतज्ञ भावसे डबडबा आईं। वह कुछ कह सके, इसके पहले ही कमण्डुप्रभु बोले—'चोलराज! आप अन्याय पक्ष लेकर युद्धके प्रवर्तक हुये। अकारण ही हजारों मनुष्योंके मूल्यमई प्राण आपकी अदूरदर्शितासे नष्ट होगये! इसका दण्ड आप जानते हैं, क्या है?'

चोलराज पींजड़ेमें बंद हुये शेरकी तरह तड़प कर बोले—'तुम्हारा भाग्योदय है; इसीपर तुम इतरा रहे हो! भेड़ें चरानेवाला आज चोलराजको दण्ड देगा! तू भी अपने मनकी करले! पर याद रख इस अधर्मका दुष्परिणाम तुझे शीघ्र भुगतना पड़ेगा!'

कमण्डु प्रभुने हंसते हुये कहा—'राजन्, इस मिथ्या धारणा हीने आपसे महाहिंसक कार्य कराया है! याद रखिये, वह त्राण-दाता नहीं है। संसारमें गुण पूज्य हैं! राजमदसे आप अंधे न बनें!'

चोलराजके लिये यह शब्द असह्य थे। वह बोले—'तुमने आज मेरे अभाग्यसे लाभ उठाकर मुझे कैदी बना लिया है; अच्छा है! किन्तु इन बातोंको मैं नहीं सुनना चाहता! तुम मुझे प्राण-दण्ड देना चाहते हो! दो, मैं तैयार हूं।'

इसी समय सिंहद्वारपर जयघोष हुआ! कमण्डुपमुने देखा कि लोकहितैषी जैनाचार्य आरहे हैं! उसने बढ़कर उनको प्रणाम किया और यथायोग्य आसनपर वह विराज गये! चोलराजने देखा जैनाचार्यके नग्नरूपको! और उन्हें उल्टा भान हुआ कि 'यही तो मेरे नाशका मूल कारण है।' वह उतावलेपनेसे बोले—'नागा बाबा, तू धर्म-कर्मके लोपपर उतारू हुआ है! ठीक है! पर जल्दी ही मेरे प्राण लेकर इस अपमानसे मुझे छुड़ा, तू साधु है, मेरा इतना तो उपकार कर!'

जैनाचार्यने उत्तर दिया—'राजन्!' तुम भूलते हो! मैं धर्मका यथार्थ रूप प्रगट कर रहा हूं। उसका लोप तो मैं स्वप्नमें भी नहीं कर सक्ता!...'

चोलराज—'म्लेच्छोंको राजपद देते और मंदिरोंमें घुसाते फिर भी धर्मोद्धारका दावा?'

जै०—'राजन्! एक बात पूंछता हूं—'म्लेच्छ है कौन?'

चो०—'म्लेच्छ वह जो नीच हो, धर्मकर्मसे हीन हो! यह भी नहीं जानते?'

जै०—'ठीक, अब ये कुरुम्बगण धर्म-कर्मयुक्त हैं या नहीं?'

चो०—'हैं क्यों नहीं! पर इससे क्या हुआ?'

जै०—'हुआ क्यों नहीं? गुणोंसे ही मनुष्य म्लेच्छ होता और गुणोंसे ही ब्राह्मण बनता है! ब्राह्मण होकर भी कोई२ दुर्बुद्धि अपनेको विषयोंका गुलाम बनाकर पतित होजाते हैं। वे ही वास्तवमें धर्मलोपक हैं!'

चो०—'वाह बाबा! धन्य हो! तुम्हारा राजा और तुम्हारा धर्म मेरे प्राण लेनेपर तुला है! लो और छुट्टी दो!'

जै०—'चोलराज! आप फिर भूलते हैं। जैन राष्ट्रमें सर्वत्र अभयका साम्राज्य होता है, चींटीसे लेकर मनुष्यतकके प्राण वहां सुरक्षित हैं। आपने अन्याय युद्ध किया उसका प्रतिकार आपके प्राण लेनेसे थोड़ा ही होगा! आपके प्राण लेनेसे एक हत्या जरूर होगी।

चो०—तो क्या मुझे सड़ा२कर मारना चाहते हो।

जै०—तुम फिर भूलते हो। जैनसाधु प्राणीमात्र—शत्रु और मित्र सबपर क्षमाभाव रखते हैं। वह प्रत्येक जीवको अभय और स्वाधीन बनानेके लिए सदा तत्पर हैं। वह धर्म ही क्या जिसमें मनुष्य मनुष्यमें भेद डाला जाय और केवल एक खास समुदायके लोगोंको आत्मस्वातंत्र्य प्राप्त करनेका हक हो।

चोलराज अब जरा शांत होगए थे। उन्होंने कहा, तो महाराज! आप मुझसे क्या चाहते हैं?

जैनाचार्य बोले—महीपति, सच्चे साधु किसीसे कुछ भी नहीं चाहते। वह तो लोकहित साधनमें निरत हैं। धर्मका स्वरूप आप समझलें, इसीमें कल्याण है।

चो०—अच्छा सुनाओ अपना धर्म!

जै०—धर्म किसीकी निजी वस्तु नहीं होती! उसका संबंध प्रत्येक प्राणीकी आत्मासे है, क्योंकि वस्तुका स्वभाव ही धर्म है। जैसे सूर्यका धर्म उष्णता है वैसे ही जीवका धर्म आत्मस्वभाव है।

भला अब कहिए धर्मपर किसका अधिकार होसक्ता है।

चो०—आप तो उसे जीवमात्रका आत्मस्वभाव बतलाते हैं।

जै०—हां वही तो धर्म है और उसको पालनेके लिए प्राणीमात्र उसी तरह स्वतंत्र है जिस तरह सूर्यकी धूप और गङ्गाके जलका उपयोग करनेमें वे स्वाधीन हैं।

चो०—यह तो आपने ठीक कहा।

जै०—यह ठीक है न! तो फिर बस प्रत्येक राजाका यह धर्म होना चाहिए कि वह लोकके जीवोंको अभय बनाए जिससे वे निशंक होकर साधुजनोंके सतसमागम और सदोपदेशसे आत्मधर्म प्राप्त करसकें।

चो०—राजोंको यही करना चाहिए।

जै०—तो महाराज आप भी जाइए लौटकर अपनी राजधानीको और सद्धर्मका प्रचार कीजिए। कुरुम्बाधीश धर्मराज हैं, वे आपकी मुक्तिमें बाधक न होंगे।

इसी समय कमण्डु प्रभुने कहा—गुरुवर्य! मैं तो चोलराजको आपके आनेके पहले ही मुक्त करके अपना पाहुना बनाचुका हूं।

जै०—धन्य है तुम्हरा आदर्श कार्य! मुझे यही आशा थी। चोलराज इस दृश्यको देखकर दंग रहगए। जनोंकी अहिंसावृत्तिने उनके मनको मोह लिया! वे आश्चर्यमें पड़ गए, देखकर इन लोगोंकी सरलता और उदारता! यही युद्धमें कितने कठोर थे और राजदरबारमें कितने कोमल हैं! उन्होंने जैनाचार्यको मस्तक नमा दिया! पुरलूरमें बड़े ही आनन्दसे विजयोत्सव मनाया गया और चोलराजको सम्मानपूर्वक विदा कर दिया गया।

(९)

चोलराज जैसे प्रबल नृपसे कुरुम्बोंकी संधि उनके अभ्युदयमें बड़ी सहायक हुई! किन्तु कुरुम्बोंको एक मात्र लगन थी सार्वधर्म जैनधर्मके प्रचारकी। उन्होंने तलवारके जोरसे उसका प्रचार करना चाहा और वह उसमें सफल भी हुये! किन्तु उनकी यह सफलता पटबीजनेकी चमकके समान क्षणिक थी! जैनाचार्यके लाख उपदेश देनेपर भी वह अपने उद्दण्ड स्वभावको काबू न कर पाये थे! हठात् जैनेतर राज्योंने उनके विरुद्ध संगठन कर लिया और चोल-राजको ही अपना नेता बनाया। सबने मिलकर कुरुम्बोंपर धावा दिया! बड़ा घमासान युद्ध हुआ। कुरुम्बगण जानपर खेलकर लड़े! किन्तु भाग्यचक्र उनके विपरीत होगया था! उनकी घोर पराजय हुई! विजितपक्षने उदारतासे काम न लिया और वह राज्यसे हाथ धो बैठे! हां, छोटे-मोटे सरदारोंके रूपमें वह जहां-तहां बने रहे! पुरल्लूर (पुलल) बेचारा खूब लूटा खसोटा गया! और आज मद्रासकी सैर करते२ जब कोई देशके उसके भग्नावशे-षोंके पाससे गुजरता है, तो वह उधर आंख उठाकर भी नहीं देखता है! भला वह क्या जाने! किसी जमानेमें यहां एक बड़ा समृद्धिशाली नगर था! विधि महारानीका खेल ही तो है! कुरु-म्बाधीश कमण्डुप्रभु एक जंगली पशुसे उसीकी बदौलत राजा हो गया और फिर धर्मके लिये अपने प्राण होमकर वही अमर 'शहीद' होगया! क्या ऐसे शहीद अब फिर जैनियोंमें देखनेको मिलेंगे?

नृप विज्जलदेव।

(१)
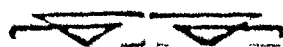
कल्याणपुरमें पुरोहित मादिराज रहता था। उसके पद्मिनी नामकी कन्या थी। वह चित्तोड़की पद्मि-नीके रूपकी बराबरी करती थी। उन दिनों वहांपर विज्जलदेवका राज्य था। यह राजा 'जैनशासनवार्द्धिवर्धनचंद्र' और 'जैनवंशान्वय-तिलक' था। राजाके कानतक भी पद्मिनीके रूप रंगकी शौहरत पहुंची थी और साथ ही उन्होंने यह भी सुना था कि वह विद्वान भी काफी है। राजाने कहला भेजा मादि-राजसे "पद्मिनीके साथ मैं विवाह करूंगा।"

राजा और एक पुरोहितकी कन्यासे विवाह करे उससे बढ़कर खुशीकी बात और क्या हो? किंतु मादिराजको राजाकी यह रुचि अच्छी न लगी। वह राजाके इस संदेशको सुनकर खुश न हुआ। इसका एक कारण था। मादिराज जैनी नहीं था वह शैव था। उसकी इच्छा नहीं थी कि वह अपनी कन्याको एक जैन राजाको व्याहदे। किंतु राजाके रोषको मोल लेना भी उसे मंजूर न था।

मादिराजके एक लड़का था। उसका नाम वासव था और वह बड़ा होनहार था। अब वह जवान होगया था। मादिराजने

उससे परामर्श कर लेना ठीक समझा। बस, वासवको बुलाकर उसने कहा—'बेटा! विज्जलका संदेशा सुना?'

वासव—हां, सुना; यही न कि वह पद्मिनीसे विवाह करना चाहता है!

मा०—'हां, इस संदेशने ही तो मुझे बड़े झंझटमें डाल दिया है।'

वा०—'इसमें झंझटकी कौनसी बात?'

मा०—झंझट क्यों नहीं? पहले तो वह क्षत्री और हम ब्राह्मण! यदि थोड़ी देरके लिए इस प्रतिलोम सम्बंधका हम ध्यान न करें तो कोई बात नहीं, क्योंकि शास्त्रोंमें ऐसे विवाहोंके उल्लेख मिलते हैं। परन्तु अपने शैवधर्मके प्रतिकूल जैन धर्मके प्रतिपालक इस राजाको पद्मिनी कैसे व्याहदीजाय?

व०—पिताजी कहते तो आप ठीक हैं; परन्तु विवाहसे और धर्मसे क्या सम्बंध? पहले भी तो जैन, शैव और बौद्ध मतानुयायियोंमें विवाह सम्बंध होते थे।

मा०—यहीं तो तुम लड़कपन देते हो! मालूम है, "अपुत्रस्य गतिर्नास्तीत्यपि किं न त्वया श्रुतं" वेदोंके इस सिद्धांतसे विवाह और धर्मका सम्बंध स्पष्ट है। हां जैनोंमें जरूर ठीक इसके विपरीत मान्यता है। वह विवाहको धार्मिक क्रिया नहीं मानते और उक्त वेदवाक्यकी खिल्ली उड़ाते हैं। भला अब कहो ऐसे लोगोंको अपनी कन्या कैसे दीजाय।

अबकी बासवने मुंह न खोला—उसके माथेमें सिकुड़न पड़ गई और वह 'हूं' करके चुप होगया। मादिराज अपनी बातोंका

जहर लड़केपर चढता हुआ देखकर खुश होता बोला—' बेटा, यह जैनी तो अपने धर्मके नितान्त प्रतिकूल हैं ! न यह यज्ञ—तर्पण मानें, न यज्ञपवितको धारण करें और न वर्णाश्रम धर्मकी उच्चता नीचतापर ध्यान दें । इनके यहां, क्या तेरी बहन खुशी रहेगी ?'

बासवको हठात् मौन भंग करना पड़ा । उसने कहा-'पिताजी, आपकी यह सब बातें तो ठीक मालूम होती हैं; परन्तु एक बात है कि पहलेके लोग क्या इन बातोंका ध्यान नहीं रखते थे ? क्या वजह है कि पहले जैन और शैव लोगोंके परस्पर विवाह सम्बन्ध होते थे ?'

मा०—' बेटा, तुम भूलते हो ! यह उदाहरण हमारे वेद-वाक्यसे बढ़कर थोडे ही होसक्ते हैं ! होसक्ता है कि जैनोंके प्रभावमें आकर लोगोंने ऐसा किया हो !'

बासवने इस बातको अधिक बढाना ठीक नहीं समझा । उसने कहा—' खैर, जाने दीजिये, इस बातको ! लेकिन इसवक्त हमें यह देखना चाहिये कि इस सम्बन्धके करने और न करनेमें हमारा क्या लाभ अथवा हानि है ? शास्त्र—वाक्योंका अन्ध अनु· करण उपादेय नहीं है ।'

मा०—' हां, यह बात तो जरूरी ठीक है !'

बा०—' ठीक है न ! तो बस पिताजी, हमें युक्ति और बिचारसे यह देख लेना चाहिये कि राजाके साथ पद्मिनीका विवाह न करें तो कुछ हानि तो नहीं है !'

मा०—' राजाके साथ पद्मिनीका विवाह करनेमें हानि तो

प्रत्यक्ष ही है। भला, राजाका रोष मोल लेकर हम लोग यहां रह भी कैसे सकेंगे?'

बा० 'हां, यहीतो बात है। इसलिये हमें चुपचाप राजाकी आज्ञाको मान लेना चाहिये और फिर इसका मन मोड़कर पद्मि-नीके सहयोगसे उसे अपने धर्ममें लानेकी कोशिश करनी चाहिये।'

मा०—' बेटा, तेरी इस सूझसे मैं सोलह आने सहमत हूं। अब यही करना चाहिये, किन्तु पद्मिनीसे भी पूंछ लेना।

बासवने कहा—' यह ठीक है ' और वह पद्मिनीको बुला-नेके लिये चला गया।

(२)

जब पद्मिनीने पिताके मुखसे अपने विवाहकी बात सुनी तो वह जमीनमें आंखें गाड़कर रहगई। मादिराजकी बातका उसने कोई उत्तर नहीं दिया। बेचारा पुरोहित बड़े अचंभेमें पड़ा। किंतु उसे बहुत देर भटकना न पड़ा। पुरोहितानीने आकर उसके बोझको हल्का करदिया। उसने पद्मिनीको अपने अंकमें लेकर उसकी दिलजोई की। जब माताने पिताका प्रश्न दुहराया तो उसने लजीली आंखोंसे कहा—इसमें मेरे परामर्शकी क्या आवश्यक्ता! योग्य वरको देखलेना आपका काम है। किन्तु माताके आग्रहने उसके मौनको भंग करनेके लिए बाध्य करदिया। वह बोली—माताजी, आप और पिताजी जो कुछ सोचेंगे वह मेरे भलेके लिए ही। हां राजाका विश्वास हमारे कुलधर्मके विपरीत अवश्य है, परन्तु यदि आप उन्हें योग्य वर समझते हैं तो मुझे उसमें कोई

आपत्ति नहीं, क्योंकि दक्षपत्नी अपने मनोनुकूल वातावरण श्वसुर गृहमें भी वनालेती हैं।

माता०—हां वेटी, यही मेरा कहना है। राजाने स्वयं तुझे ग्रहण करनेकी इच्छा प्रकट की है। वह तुझे जरूर अच्छे २ रक्खेगा और तेरा कहा मानेगा। तु चाहेगी तो राजाको भी शैव-धर्मका अनुयायी वनादेगी।

प०—मां किसीके धार्मिक विश्वासको पलटना न पलटना एक वात है और दांपत्य धर्मको निवाहना दूसरी वात है। फिर प्रत्येक मनुष्यको अपना २ ही धर्म सत्य प्रतीत होता है। इस दशामें अनायास ही किसी वातका निश्चय करलेना कठिन है।

मा०—यह ठीक है वेटी। परन्तु जव तु सत्यधर्मका स्वरूप विज्जलदेवको सुझायगी, तो आश्चर्य क्या, वह शैव होजाय।

प०-हवाई किले वनाना मांजी सुगम हैं किंतु इसका क्या सवूत कि शैवमत ही सत्यधर्म है?

पद्मिनीकी माता इस प्रश्नको सुनकर चुप रहगई, परन्तु वासवने आगे आकर अपनी वहनका समाधान करनेका प्रयास किया। वह वोला—वहन, आज तुम कैसी वहकी २ वातें करती हो। क्या कुलधर्ममें तुम्हें विश्वास नहीं रहा?

पद्मिनीने उत्तरमें कहा—भाई मैं शैवधर्मको वुरा कब वताती हूं परन्तु मेरे वुरा न वतानेसे क्या वह अच्छा और सत्य सिद्ध होजायगा?

वा०—जरूर, इसके लिए तुम्हें शैवमतकी श्रेष्टता वतानी

१०-किन्तु भाई, अहिंसाधर्म-प्राणीमात्रपर प्रेमभाव रखनेवाला धर्म हेय ? यह कैसे होसक्ता है ? क्या शैवधर्ममें मनुष्योंके दिलको लुभानेवाला यह स्वर्ण सिद्धांत मौजूद है ? जैन तो सूक्ष्मातिसूक्ष्म जीवोंको जीवित रहने देनेके लिए छानकर पानी पीते और सूर्यास्तके बाद नहीं खाते। उनके सार्वभौमिक प्रेमने देशके मनको मोह लिया है। क्या ऐसा धर्म मेरे कहने मात्रसे असत्य ठहर जायगा !'

बासवने इसपर कहा-' बहिन, तू इस बातकी फिक्र न कर। मैं शैव धर्मको इस ढांचेमें उपस्थित करूंगा कि जैनी सिद्धान्तोंको माननेवाले भी उसको अपनानेमें आगापीछा नहीं करेंगे।'

पद्मिनी बोली-' तो यह बात दूसरी है। इसका अर्थ तो यह हुआ कि आप जैन धर्मके प्रभावको स्वीकार कर लेंगे !'

"राष्ट्रको अपने मतानुकूल बनानेके लिये, यह सब कुछ करना पड़ेगा। तेरा भाई अन्धश्रद्धालु नहीं है। वह समयकी मांगको देखकर काम करता है।" यह कहता हुआ बासव चला गया।

कहना न होगा, बासवने अपने इस निश्चयको सफल बनाकर ' लिंगायत ' नामक शैव संप्रदायको जन्म दे दिया। उसे यह भी मालूम था कि राष्ट्रीयतामें मुहर हाथ रक्खे बिना अपने मतको देशमें स्थाई और व्यापक स्थान दिला देना भी कठिन है। ठीक भी है, हजार मनुष्योंको अपने मतमें दीक्षित कर लेना उतना हितकर नहीं है, जितना कि एक राजाको ! बस, बासवने पद्मिनीका विवाह राजासे होजाने दिया।

(३)

पद्मिनीका विवाह विज्जलदेवसे होगया। पुरोहित और राजवंशोंमें घनिष्टता बढ़ गई। वासवने भी अपने बहनोईसे बड़ा प्रेम दर्शाया; किन्तु उसका यह प्रेम आजकलके अंग्रेजोंके भारतीय प्रेमसे कम अर्थपूर्ण न था। धीरे ही धीरे उसने राजाके दिलपै ऐसा सिक्का जमा लिया कि वह राजसेनाका नायक होगया। विप्र वासवकी जगह वह सेनापति वासव बन गया। गुणोंका चमत्कार यही तो है। किंतु इस उत्तरदायित्व पूर्ण पदको पाकर भी वासवके दिलको चैन नहीं थी। उसे राजमहलों और दरवारमें दिगम्बर जैन साधुओंका आनाजाना बड़ा खटकता था और उधर विज्जलदेव सम्मुख उनके विरुद्ध मुंह खोलनेका भी उसे साहस नहीं होता था। राजाकी आस्था जैन धर्ममें बड़ी जबरदस्त थी। दिल्लीकी किल्लीकी तरह उनका जैन श्रद्धान अटल था। वासव यह बात जानता था। बस यह रातदिन इसी फिक्रमें डूबा रहता था कि बिज्जलदेवको अपने मार्गमेंसे कैसे हठाऊं?

महत्वाकांक्षा और मतवादका नशा मनुष्यको मतवाला बना देता है, तब उसे सिर्फ एक धुन सवार रहती है कि कैसे अपनेको बड़ा बनाऊं और अपने मतको सर्वोपरि और सबके गले कैसे उतराऊं? ऐसे प्रश्नोंको हल करनेमें वह उन श्वानवृत्तिका शिकार होजाता है, जो हड्डीको चचोड़कर अपना खून बहानेमें बेसुध होजाता और जो कोई उसके पास पहुंचकर उसके इस पागलपनको दूर करनेकी कोशिस करता तो वह उसपर गुर्राता है।

किंतु यह वृत्ति सुखद नहीं है। इस ढंगसे न तो व्यक्तिको महत्व मिलता है और न वह अपनी इष्टसिद्धि करपाता है। हां यह बात जरूर है कि उसके इस कार्यसे अशांति और अपत्यका दौरदौरा चमक जाता है, भारी संघर्ष उठ पड़ता है, लोग हैरान होजाते हैं और फिर 'भय बिन प्रीति नाहिं' की नीति कार्यकारी होजाती है। वासवके संबंधमें कुछ ऐसा ही हुआ।

पहले उसने यही सोचा, चलो पद्मिनीके द्वारा राजाको अपने रास्तेपर ले आऊं। और इसके लिए उसने पद्मिनीको उकसाया भी, किन्तु बेचारी पद्मिनी राजाके निश्चल श्रद्धानके अगाड़ी न कहींकी होरही। एकरोज विज्जलने जाकर उससे पूछा—'बहिन' कहो, राजाके दिलको शैवानुकूल बनानेमें तुम कितनी सफल हुईं ?'

पद्मिनीने निराशाकी हंसी हंसकर कहा—'भाई, भूल जाओ यह बातें। जिस महत्वको पागये हो उसीमें संतोष करो। धर्मान्ध बननेसे कुछ सरनेका नहीं!'

'अरी पगली, तू हताश क्यों होती है ? वासव धर्मान्ध नहीं; वह सत्यका हामी है, उत्तरमें कहा वासवने !

'यदि यह बात है, भाई !' बोली पद्मिनी, 'तो संप्रदायके मोहमें क्यों पड़े हुये हो ? सत्य किसी संप्रदाय, देश या समयका कैदी नहीं है। वह हरसमय, हरजगह और हरव्यक्तिके लिये एक समान है। सत्य सदा सर्वदा और सर्वत्र एकसा है—चाहे कोई अपनेको शैव कहे और चाहे जैन या बौद्ध पर सत्य सबके लिये एक ही रहेगा !'

'यह कैसे ?' बासव झुंझलाया, 'जिस बातको हम धर्मानुकूल सत्य मानते हैं, उसको जैनी नहीं मानते। फिर सत्य सदा-सर्वदा एकसा कैसा ?'

'प्यारे भाई, यही तो भारी भूल है।' कहा पद्मिनीने, 'पहले मैं भी यही समझती थी। किन्तु श्री राजन्‌के मुखसे धर्मकी व्याख्या सुन लेनेपर मुझे सत्यके दर्शन होगये हैं। तुम कहते हो, यज्ञ तर्पण करना, यज्ञोपवीत धारण करना आदि धर्म है। किन्तु वास्तवमें धर्म यह नहीं है। धर्म वस्तुका स्वभाव है और यही निखर सत्य है। अब वही क्रियायें धार्मिक कही जासक्ती हैं, जिनसे वस्तुके स्वभावमें व्यतिक्रम न होकर उसके प्रति अनुकूलता हो। इन क्रियायोंको चाहे कोई नाम देकर पुका....।'

बासव पहलेसे ही झुंझला रहा था। उसने बात काटकर कहा—'बस रहने दो। मैं जान गया। विज्जलने तुझे बहका लिया है ? औरत हो न आखिरको—सोनेके टुकड़ेपर ईमान....।'

पद्मिनी भी अधिक न सुन सकी। उसने कहा—'बस चुप रहिये, महाराज। स्त्री जाति धनके लिये अपने धर्मको कभी नहीं गंवाती, यह याद रखिये।'

बासव अब वहां ज्यादा देर न ठहर सका। वह जल्दी ही जल्दी महलोंके बाहर निकल आया। पद्मिनी वहींकी वहीं खड़ी रह गई। वह सोच ही रही थी कि उसकी आंखोंपर किसीके हाथ आपड़े। वह मुस्कराकर बोली—'इस तरह मैं नहीं ठगी जानेकी।' विज्जलदेवने कहा—'तुम बड़ी पंडित हो न। पर बेचारे बासवको क्यों नाराज कर दिया ?'

'नाराज क्या कर दिया!' पद्मिनीने कहा, 'वह अपने आप ही बहक गया!'

'कुछ हो, उसकी धर्म लगन सीमाको उल्लंघन किये हुये है। इसमें शक नहीं।' कहते हुये राजा और रानी देवमंदिरको ओर चले गये।'

(४)

राजमंदिरमें हा-हा-कार मच गया। आधीरातके सुनसानको इस चीत्कारने भयंकर विप्लवमें बदल दिया। एकके पीछे एक सिपाही एक ओरको भाग निकले थे। वह चिल्ला रहे थे—'पकड़लो, हत्यारा निकलने न पाये!' 'महा अनर्थ किया, वह घातक वार था, जल्दी बुलाओ राजवैद्य को!' लोगोंको समझनेमें देर न लगी! 'किसी राजद्रोहीने राजाको मार डालनेकी कोशिश की है' का आर्तनाद कल्याणपुरकी गली और कूचोंमें सुनाई पड़ने लगा! राजमहलमें पद्मिनी विज्जलदेवको संभाले पड़ी हुई थी। राजवैद्यने शीघ्र ही आकर उनकी दवादारू की! राजाने आँखें खोल दीं, उनको होश आगया! घातकके निर्दयी वारसे वह बच गये! इसलिये उन्होंने अपने भाग्यको सराहा और भगवानका स्मरण किया! पद्मि-नीके जीमें जी आया। उपचारसे राजाकी दशा सुधरने लगी!

उधर सिपाहियोंने हत्यारे घातकको अछूता न निकल जाने दिया! अंधेरी रातने उसकी सहायता तो बहुत की; परन्तु उसका वज्र पाप उस अंधेरेके कलेजेको चीरकर दहक रहा था। वह घबड़ाया हुआ भागा गया और पापकी-आगको छिपानेके लिये गहरे जलमें जा गिरा। किन्तु उसकी रक्षा वहां भी नहीं हुई।

सिपाइयोंने आकर उसे पानीमेंसे पकड़ निकाला। मसालोंकी रोशनीमें जब उन्होंने उस हत्यारेका मुंह देखा, तो वे अवाक् रहगये। राजाका अनन्यतम् कृपापात्र और खास साला, तो भी उन्हींके प्राणोंका ग्राहक! वासवके इस दुष्कृत्यके लिये सबने ही उसके मुंहपर थूका! वह पकड़कर बन्दीगृहमें डाल दिया गया। किंतु जब विज्जलदेवके सम्मुख वह विचारार्थ उपस्थित किया गया, तो उन्होंने उसे वेलाग छोड़ दिया! यही क्यों? उसको सेनापति भी बना रहने दिया। लोगोंको अचम्भा हुआ राजाके इस कृत्यपर। किंतु विद्वानोंने कहा 'यही तो स्वर्ण-सिद्धांत है। धन्य हैं विज्जलदेव! क्षमा ही तो वीरोंका भूषण है! क्या हो तुलना वासवके स्वार्थ और राजन्के उदारभावकी! संसारका वैचित्र यही तो है।

(९)

विषधरको अमृत पिलाइये तो भी वह अपने स्वभावको नहीं छोड़ता। विज्जलने वासवके प्रति जिस उदारताका परिचय दिया था, उसको देखते हुये कोई भी मनुष्य जिसके हृदय है; यह नहीं मान सक्ता कि वही वासव फिर भी अपने बुरे इरादेसे वाज नहीं आयगा! किंतु वासवने इस सम्भावनापर भी हरताल फेर दिया और वह विषधर ही साबित हुआ! वासवने गुप्त रीतिसे शैवधर्मके पुनरुत्थानके लिये कमर कस ली। साम्प्रदायिकताका भूत उसके सिरपर चढ़कर नाचने लगा। उसने देखा, विज्जलदेवको अपने मार्गमेंसे हटाये विना कुछ भी सरनेका नहीं। वह भूल गया विज्जलदेवके उस मानव दुर्लभ सुकार्यको जिसने

उसे जीवन दान दिया, और लगा उसके प्राणोंके नष्ट करनेका षड़यंत्र रचने। उसके साथियोंने उसका साथ दिया। अपने स्वार्थमें पागल हुआ मनुष्य विवेक खो बैठता है और जिसे महत्वाकांक्षाकी चुड़ैल और सांप्रदायिकताका भूत भी लगा हो, उसकी बात फिर कुछ पूछिये नहीं।

बिज्जलदेवने ससैन्य कोल्हापुरके राजापर धावा बोला था। बासव भी साथमें गया था। बड़ा घमसान युद्ध हुआ था। किंतु विजयलक्ष्मी जैन-वीर बिज्जलदेवके पक्षमें हो रही थी। इस जीतकी खुशियां मनाई गईं। सेनाने भीम नदीके किनारे आकर डेरा डाला! बिज्जलदेवका बड़ा भारी दरबार लगा। खूब शान-शौकत मनाई गई।

बासवने अपने दावके लिये यह मौका अच्छा समझा। उसने राजाकी नजर पके हुये अच्छे आम किये। राजाने भी उन्हें बड़े चावसे खाया। बासवका तीर काम कर गया। आम विष-बुझे थे और उनके खाते ही राजाके प्राण छूटने लगे। राजशिविरमें कोला-हल मच गया। बासव इस गड़बड़में चुपचाप वहांसे निकल गया! और इधर बिज्जलदेवके प्राणपखेरू भी इहलोकसे प्रयाण कर गये!

सम्राट्-नृपति बिज्जलदेवका स्वर्गवास हुआ जानकर देश-भरमें हाहाकार मच गया और लोगोंने जब यह जाना कि यह षड़यंत्र बासव और उसके शैव साथियोंका दुष्कृत्य था तो वे स्व-भावतः उनसे घृणा करने लगे। [illegible] फिर झगड़ा उठा और बासवके इस दुष्कृत्यके कारण देशकी शांति भङ्ग

उपयोगी कार्यकी ओर न लगकर इस धार्मिक युद्धमें लग गई!

(६)

बिज्जलदेवके पुत्र सोमेश्वरने वासवको पकड़ लानेके लिये एक बड़ा भारी इनाम निकाला! चाहे यह इनाम निकलता या न निकलता, उनकी प्रजा स्वतः वासवकी फिराकमें थी। उसका वहांसे सहीसलामत निकल जाना कठिन था। हुआ भी यही! वासव कडलतडि प्रान्तके वृषभपुरकी ओर भगा जारहा था कि वहींपर राजदूतोंने उसे जा घेरा। उसने देखा, 'अब मेरा बचना मुहाल है। राजदूतोंके हाथों पड़नेसे तो मर जाना ठीक है।' वासवने अपने इस विचारको शीघ्र ही कार्यमें बदल दिया। सामने एक गहरी वापी थी, वह उसीमें कूद पड़ा और डूब मरा!

वासव राजभयसे मर जरूर गया, लेकिन उसकी धर्मान्धताका अन्त नहीं हुआ। जो उसके साथी बाकी बच रहे, उन्होंने उसे 'शहीद' माना और मौका लगते ही उन्होंने देशमें गृह-युद्ध मचा दिया! देशकी बरबादीके साथ२ जैन धर्मको भी भारी धक्का लगा! किन्तु एक बात जरूर उल्लेखनीय रही और वह है बिज्जलदेवकी उदार-हृदयता और वासवकी धर्मान्धता! पहलेसे देश और जाति सुख-शांति और उन्नतिमें फला फूला; किन्तु दूसरेके कारण वही भय-अशान्ति और अवनतिके गर्तमें जा गिरे! इन्हीं कारणोंसे हमारी राष्ट्रीयताकी धज्जियां उड़कर वह निःशेष होगई! यह अभाग्य है इस देशके लोगोंका!

सेनापति वैकप्पन्

(१)

वि जयनगरके बाहर बागमें वैष्णव लोगोंकी भीड़ लगी हुई थी। वह मामूली भीड़ नहीं थी। उत्तेजित पुरुषोंका जमघट था। तब हिन्दू राज्य था और राजसिंहासनपर राजा बुक्काराय सुशोभित थे। लोगोंको पूर्ण स्वाधीनता थी। उनके पास पुरुषोचित ढाल-तरवार और तेगा-भाले भी थे। इस जमघटमें भी तलवारें और भाले चमक रहे थे। लोग बड़ी सर गरमीसे बातें कर रहे थे। इसी अवसर-पर एक सजीले युवकने उनके बीचमें आकर कहा—" भाइयो, धर्मान्ध बननेसे काम नहीं चलता। जैनी भी भारत संतान हैं। यदि वह हमारे साथ एक पवित्र स्थानपर देवोपासना करना चाहते हैं, तो इसमें हमारी क्या हानि..."

युवक अपनी बात पूरी भी न कर पाया कि भीड़के लोगोंने चिल्लाकर कहा—' चुप रहो, धर्मभ्रष्ट हो, नास्तिक हो; हम तुम्हारा मुंह नहीं देखना चाहते !'

किन्तु युवकने इसपर भी धीरताको न छोड़ा, वह वहीं पैर जमाये खड़ा रहा और दृढ़ताके साथ बोला—' मुझे धर्मभ्रष्ट बताते हो, ठीक है। पर जरा सोचिये तो सही आप; देशपर यवनोंकी काली घटायें मड़रातीं चली आरही हैं और आप अपने भाइयोंसे

ही लड़नेको उतारू हैं ! क्या यही धर्म—मर्यादा है ?'

अबकी बार उद्दण्ड समूहको साहस नहीं हुआ कि वह युवकका तिरस्कार करता । उनमेंसे किन्हीं बुद्धिमान पुरुषोंने अगाड़ी बढ़कर कहा—' भाई, तुम कहते तो ठीक हो; परन्तु अपने धर्मस्थानोंकी भी रक्षा न करना, क्या बुद्धिमत्ता है ?'

युवकने उत्तर दिया—' धर्माधिकारियो ! मैं भी आपको इस रक्षाके लिये ही तो सचेत करता हूं ।'

वे बोले—यह कैसे ? तुम तो जैनियोंको उसपर काबिज हो जानेदेने कहते हो !'

युवकने कहा—' छिः छिः, मैं यह क्या सुन रहा हूं ! धर्म और धर्मायतनोंपर भी कब्जा ! क्या धर्म या धर्मायतन किसीकी बपौती है ?'

' बपौती नहीं ।' उन्होंने कहा—' किंतु प्रत्येक सम्प्रदायको अपने धर्म और धर्मायतनोंको विधर्मियोंसे अक्षुण्ण बनाये रखना जरूरी है !'

' ठीक है, यदि कोई विधर्मी और विजातीय, उस पवित्र चीज और पावन स्थानकी दिव्यताको नष्ट करनेको उतारू हो तभी न ! किंतु जैनी तो ऐसी कोई बात नहीं करते ! ऐसी बात तो वह नृशंस यवन लोग करेंगे जो आंधीकी तरह तुमपर चढ़ते चले आरहे हैं । क्या तुम आपसमें लड़कर इस भावी संकटसे अपने धर्म और धर्मायतनोंकी रक्षा कर सके हो ?'

युवकके इस प्रश्नने उन वैष्णव-नेताओंको ढीला कर दिया ।

वे सहमके बोले—'हां भाई, तुम्हारे कथनमें कुछ वजन तो जरूर मालूम होता है। किन्तु एक बात है, इस उलझी गुत्थीको अब तुम्हीं सुलझाओ!'

युवकने मुस्कराते हुये कहा—'पूज्य पुरुषो! आप मुझपर विश्वास करते हैं, यह मेरा सौभाग्य है। देश आपकी इस सुबुद्धिका चिर-ऋणी रहेगा। इस समय भारतीय आर्य सभ्यताके प्रत्येक प्रेमी चाहे वह जैन हो या शैव, वैष्णव हो या बौद्धका कर्तव्य है कि वह पारस्परिक सहनशीलताको अपना कर भावी संकटका मुकाबिला करनेके लिये संगठित होजावे!'

अबकी भीड़ने चिल्लाकर कहा—'ठीक कहते हो, युवक! किन्तु हम अपनी धर्मक्रियाओंको अक्षुण्ण रक्खेंगे।'

युवकने उत्तरमें कहा—'जरूर रखिये; परन्तु धर्मान्धता अख्तियार न कीजिए। अपने धर्मायतनोंका द्वार जीवमात्रके लिये खुला रखिये। जिस धर्मायतनके लिये आप झगड़ते हैं, उसका राज दरबारसे निबटारा करा दिया जायगा!'

भीड़के लोगोंने इस बातको पसन्द कर लिया और वे लोग अपनी पहली गलतीपर पछताने लगे। अपने चोटल साथियोंको देखकर मन मसोसने लगे कि नाहक जैनियोंसे रार मोल लेकर यह खून खराबा किया! युवकके हाथमें सब मामला सौंपकर वे लोग अपने२ घर चले गये!

(२)

विजयनगरके राजदरबारमें भीड़ लगी हुई थी। जैन और

वैष्णव, दोनों ही संप्रदायोंके लोग वहांपर मौजूद थे। किन्तु वे आपसमें एक दूसरेसे कटे-कटेसे होरहे थे। देखते ही देखते राजा चुकराय राजसिंहासनपर आ विराजमान हुये। राजकाज शुरू हो गया। मंत्री महोदयने पहले ही पहले 'जैन वैष्णव' झगड़ेके मामलेको पेश किया। राजाने सब बातें ओतप्रोत सुनीं और अंतमें वह दोनों सम्प्रदायोंको लक्ष्य कर बोले—'भाइयो! धर्मके नामपर आपसमें लड़ना बहुत बुरा है। वह धर्म ही नहीं जो प्राणीमात्रके प्रति प्रेम-भाव रखनेका उपदेश न देता हो। मुझे यह मालूम करके अतीव दुःख है कि मेरी जैन प्रजाको वैष्णव रियाआने वृथा ही सताया है और दोनोंमें निरर्थक संघर्ष हुआ है! किन्तु साथ ही मुझे यह जानकर हर्ष है कि राष्ट्की निधि उठते जवानोंमेंसे एकने आपको राह-रास्तेपर लानेमें देर न की। वह राष्ट्का हितचिन्तक है। आप उसके आदर्शको अपनायें। याद रखिये, आप लोग वैष्णव और जैन धर्मकी वाह्यचर्यामें बहुत कुछ साम्य है। अतः आप लोग अब अपनी भूलके लिये पश्चाताप करें और आओ, मेरे सामने एकदिल होकर दोनों संप्रदायोंके नेताओंमें मिल जाओ। आज राष्ट्को हमारे सामाजिक संगठनकी भारी आवश्यक्ता है। मेरे राज्यके विविध धर्मावलंबियोंको यह भूल न जाना चाहिए।

राजासा० का वक्तव्य ज्योंही खतम हुआ कि वैष्णव और जैन नेताओंने परस्पर गले मिलकर सब भेदभावको भुलादिया! जैन—प्रमुख श्रीयण्णने राजाके इस आदर्श कार्यकी सराहना करते हुए कहा—महाराजाधिराजसे हमें यही आशा थी। आप वैष्णव हैं

तो क्या, आपके इस नीरक्षीरवत न्यायके लिए जैनी मात्र राज्यका आभारी है। किन्तु श्रीमानूके ध्यानमें यह लाना अनुचित नहीं है कि जैनधर्ममें सांप्रदायिक मोहको कोई स्थान प्राप्त नहीं है। वह मिथ्यात्व है, अधर्म है। जैनी राजाज्ञाका सदा पालन करेंगे।

महाराज बुक्करायने प्रसन्न होकर कहा—ठीक कहते हो श्री-यण्ण! राज्यकी शोभा तुम्हारे जैसे नररत्नसे है। मेरी आज्ञा प्रत्येक वैष्णव मंदिरमें पत्थरपर खुदवाकर लगादी जायगी और मुझे विश्वास है कि प्रत्येक वैष्णव उसका आदर करेंगे।

अबकी वैष्णव नेताओंने राजाको विश्वास दिलाया कि महाराज! हम लोग राष्ट्रहितके लिए श्रीमानूकी आज्ञा माननेको तैयार हैं।

धन्य है मेरा राज्य, जिसमें ऐसी समझदार प्रजा है। अब हमारा संगठन होते देर न लगेगी। महाराज बुक्करायने कहा।

दरबारियोंने कहा—यह महाराजके पुण्य प्रतापका प्रभाव है। विजयनगर साम्राज्य चिरंजीवी हो।

मध्याह्नकी वेलामें दरबार समाप्त हुआ और राष्ट्रीय हित-कामनाकी प्रसन्नतामें दिशाएं नाच उठीं।

(३)

एक उगता हुआ युवक वैष्णव मंदिरके द्वारपर खड़ा हुआ बड़े गौरसे एक उकेरे हुए पत्थरको पढ़रहा था। उसमें लिखा था—

"श्रीमान महाराजाधिराज बुक्करायकी आज्ञा है कि जबतक सूर्य और चन्द्र विद्यमान रहें तबतक वैष्णव-समय

जैन दर्शनकी रक्षा करनेमें तत्पर रहे । वैष्णवोंको यह अधिकार न होगा कि वे जैनोंको किसी भी दृष्टिमें अपनेसे भिन्न समझें ।"

इस शिलालेखको पढ़ते २ वह युवक प्रसन्न हो मंदिरकी भीतरकी ओर बढ़ा और अपनी ढाल तलवार वहीं रखकर उसने मंदिरके दर्शन करलिए । दर्शन करके वह लौटा और ढाल तलवार उठाकर एक ओर चलता हुआ । वह अभी बहुत दूर नहीं गया था कि जैन नेता श्रीयण्णसे उसका साक्षात् होगया । उसने श्रीयण्णके चरणस्पर्श करके प्रणाम किया । श्रीयण्णने आशीष देकर पूछा " बेटा, तुम शिविरसे कब लौटे ?"

युवकने कहा—" पिताजी, मैं अभी वहांसे सीधा ही चला आ रहा हूं । अभी मात्र वैष्णव मंदिरको देखता आया हूं ।"

" शिविराधीश सीमाकी रक्षाके लिये समुचित प्रबंध कर चुके होंगे ?" श्रीयणने पूंछा । युवकने उत्तरमें 'हां' कहते हुये कहा,—' पिताजी, मालूम होता है, अपने राजाने देशके भीतरी झगडोंको भी निबटा दिया है । यह अच्छा हुआ ।'

श्रीयण्ण बोले—'हां, बेटा ! अब साम्प्रदायिकताके कारण लोग सहसा राष्ट्रका अहित न कर सकेंगे । किंतु यह तो बताओ, तुम्हें सेनामेंसे छुट्टी कैसे मिल गई ?'

युवक बोला—' छुट्टी नहीं पिताजी ' सेनाके नियमोंमें परिवर्तन होगया है । चूंकि मुझे एक वर्षसे अधिक सेनामें गये होगया था, इसलिये अब मैं एक—दो महीने घरपर रह सकूंगा ।'

'ओह, यह बात है। अच्छा, चलो—घरपर तुम्हें पाकर सब लोग बड़े खुश होंगे।' श्रीयण्णने कहा।

कहना न होगा कि यह युवक श्रीयण्णका पुत्र था और वह विजयनगर राजसेनामें सैनिक था। उसका नाम वैचप्प था। अपने पिता और माताकी तरह वह भी जैनधर्म-प्रेमी था। अस्तु, ज्योंही पिता पुत्र घरपर पहुंचे, मां बहनोंने उनका हर्षित हो स्वागत किया। घरका कोना कोना उनके शुभागमनसे खिल गया पालतू पटेराम चहक उठे।

(४)

उत्तर भारतको मुगल सेना जीत चुकी थी और मुगल राज्यकी जड़ भारतमें बहुत पहलेसे जम चुकी थी। अब उनकी गिद्ध दृष्टि दक्षिण भारतको जीत लेनेपर लगी हुई थी। मुगल-अक्षौहिणी टिड्डीदलसी उधरको बढ़ती चली आरही थी। महाराष्ट्रमें उनके पैर कुछ २ जम चले थे और कोंकण प्रदेशको भी उसने विजयनगर साम्राज्यसे छीन लिया था। विजयनगरके हिन्दू साम्राज्यके लिये यह एक भयंकर आघात था। किन्तु यह अच्छाई थी कि बुक्करायके समयमें राष्ट्रकी आन्तरिक हालत बहुत कुछ उन्नत होगई थी। अब उनके पुत्र हरिहरदेव राजसिंहासनपर आसीन थे और वैचप्प भी उन्नति करके एक सेनानायक बने हुये थे। कोंकण प्रदेशसे यवनोंको मार भगानेके लिये हिन्दू सेना एकत्र की जाने लगी और शीघ्र ही वीर सुभटोंका एक खासा दल यवनोंपर आक्रमण करनेके लिये तत्पर होगया। सभीके

दिलोंमें अपूर्व उत्साह हिलोरें मार रहा था । हरकोई चाहता था कि मैं ही सबसे पहले बढ़कर देशका उद्धार करूं अथवा अपने कर्तव्यपालनमें वीरगतिको पाजाऊं ! ऐसे मौकेपर सेनाके नायकत्वका प्रश्न उठ खड़ा हुआ ! अनेक सेनानायक समर संचालनके लिये उद्यत थे । जैनकुलमार्तंड वैचप्प भी इनमें एक थे । भला उन जैसे एक जैनके लिए यह कहां संभव था कि वह राष्ट्र-सेवाके इस अचूक अवसरको गँवा बैठते ! हठात् राजदरबारसे यह निर्णय हुआ कि मल्लपवोडेयर प्रधान सेनापति नियत किए जाते हैं और उनके साथ सेनापति वैचप्प एवं अन्य नायक भी होंगे ।

इस निर्णयको सुनकर वैचप्प बहुत ही प्रसन्न हुए । वह घरके लोगोंसे सानंद विदा हुए और अपनी सेनाको लेकर कोंकण-विजयके लिए विजयनगरसे निकल पड़े ।

जिस समय वह सफेद घोड़ेपर सैनिक वेषमें सवार हुए अपनी सेनाके आगे २ शहरमेंसे होकर गुजरे । उनके संबंधियोंने अपने भाग्यको सराहा और पड़ोसियोंने ईर्ष्याकी कि हमारे भी ऐसा ही राष्ट्रहितमें निरत पुत्ररत्न हो । लोगोंने उनपर फूल बिखेरे और 'हिंदू साम्राज्यकी जय' के नारोंसे आकाश गूंज गया !

(९)

सन् १३८० में कोङ्कण प्रदेशसे यवन लोग निकाल बाहर करदिये गये और वहां विजयनगर साम्राज्यका झण्डा फहराने लगा । इस प्रांतकी राजधानी गोआ भी अब अपनी जवानीपर आगया । उसके अंकमें एक खास रत्नहार छुपा हुआ था । और यह

था, पिछले युद्धमें वीरगतिको पहुंचे हुये सामन्तोंके स्मारक चिह्न। इन्हें लोग 'वीरगल्' कहते हैं। आज तो यह पवित्र चिह्न सर्वसाधारणके लिये मात्र पाषाणके टुकड़े ही हैं; किंतु उस समय इनकी बड़ी कदर और विशेष मान्यता थी। ऐसे ही एक वीरगलके सामने गोआके जैनी लोग इकट्ठे होकर कहते सुने गये, 'यह है सेनापति वैचप्पका वीरगल। कोंकण युद्धमें उन्होंने किस वीरताका परिचय दिया और राष्ट्र यज्ञमें अपनी आहुती चढ़ा दी, यह इसके चित्रोंसे स्पष्ट है।' किंतु समयके फेरमें यह वीरगल हिन्दुओंकी नजरसे गया-गुजरा होगया और लोग वीर सेनापति वैचप्पको भूल गये। यह हुआ जरूर, पर विमल कीर्ति अमिट होती है। जैसे अशोककी पवित्र शासन लिपियोंको पुरातत्वविदोंने ढूंढ निकाला, वैसे ही उस रोज वीर वैचप्पका उक्त वीरगल पुनः लोगोंके सम्मुख उपस्थित किया जाचुका है। उसपर लिखा है, 'यह वैचप्पका वीरगल है, जिन्होंने कोंकण संग्राममें नाम पाया और सैंकड़ों कोंकणियों (यवनों) को यमलोक भेज दिया! इस सुकृत्यके उपलक्षमें उन्होंने स्वर्गधामको पाया और जिन भगवानके चरणकमलोंकी निकटता पाई।'

श्रीयप्पणा पिता और वैचप्पसा पुत्र उस समयके भारतके रत्न थे और आजके भारतके लिये भी वह कुछ कम मूल्य और महत्वके नहीं हैं! अतः आओ, बोलो 'हिन्दू साम्राज्य रक्षक वीर वैचप्पकी जय!

नव-रतन ।

न

व

र

त्न

आप 'पंचरत्न' तो पढ़ेंगे ही मगर 'नवरत्न' भी मंगाकर पढ़िये। यह कृति भी सुप्रसिद्ध इतिहास लेखक बाबू कामताप्रसादजीकी ही है। इसमें अरिष्टनेमि, चंद्रगुप्त, खारवेल, चामुण्डराय, मारसिंह, गंगराज, हुल्ल, सावियव्वे और सती रानीकी ऐतिहासिक कहानियां हैं। इन्हें पढ़कर जैनोंकी वीरता, उनके पराक्रम, राज्यसंचालनकी चतुरता, और सार्वभौम साम्राज्य तथा अहिंसक होकर भी युद्ध करनेकी हृदय हिलादेनेवाली बातें एवं जैन वीरोंकी हृदयग्राही जीवन घटनायें मालूम होंगी। इसे पढ़ लेनेसे जैनोंपर लगाया गया कायरताका कलंक धुल जाता है। एक प्रति तो आज ही मंगा लीजिये।

मू० सिर्फ ।=)   पता—

मैनेजर,

दिगंबर जैन पुस्तकालय–सूरत।